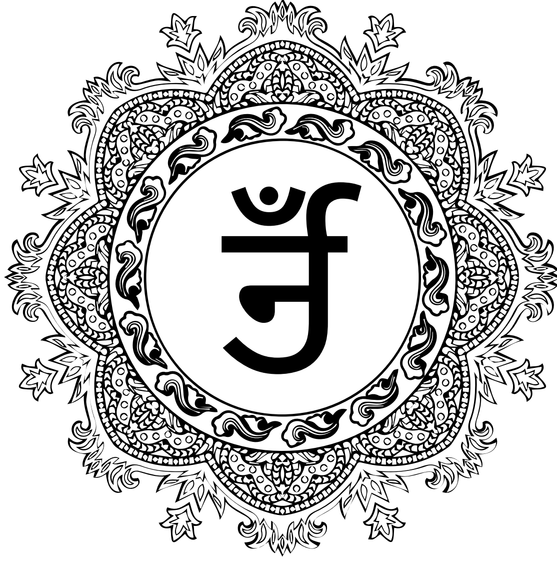


आराधनासार

श्रीमद् देवसेनाचार्य



आराधनासार

श्रीमद् देवसेनाचार्य

श्री देवसेनाचार्य

देवसेन नाम के कई आचार्यों के उल्लेख मिलते हैं। एक देवसेन वे हैं जिन्होंने विक्रम सं. 990 में दर्शन सार नामक ग्रंथ की रचना की थी। आलाप पद्धति, लघु नयचक्र, आराधना सार और तत्त्वसार नामक ग्रंथ भी आचार्य देवसेन के द्वारा रचित हैं। इन सब ग्रंथों को दर्शन सार के रचयिता देव सेन की कृति माना जाता है। इनका बनाया हुआ एक भाव संग्रह नाम का ग्रंथ है । उसमें वे अपने विषय में इस प्रकार कहते है-

सिरिविमलसेण गणहरसिस्सो णामेण देवसेणुत्ति ।
अबुहजणबोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुतं ॥

इससे मालूम होता है कि इनके गुरु का नाम श्री विमलसेन गणधर (गणी) था। दर्शनसार नामक ग्रंथ के अंत में वे अपना परिचय देते हुए लिखते हैं :-

पुव्वायरियकराइं गाहाइं संचिऊण एयत्थ ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥49॥
रइओ दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए नवए ।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ॥50॥

अर्थात् पूर्वाचार्यों की रची हुई गाथाओं को एक जगह संचित करके श्रीदेवसेन गणि ने धारा नगरी में निवास करते हुए पार्श्वनाथ के मंदिर में माघ सुदी दशवी विक्रम संवत् 990 को यह दर्शनसार नामक ग्रंथ रचा। इससे निश्चय हो जाता है कि उनका अस्तित्व काल विक्रम की दसवीं शताब्दी है। अपने अन्य किसी ग्रंथ में उन्होंने ग्रंथ रचना का समय नहीं दिया है।

यद्यपि इनके किसी ग्रंथ में इस विषय का उल्लेख नहीं है कि वे किस संघ के आचार्य थे, परंतु दर्शनसार के पढ़ने से पह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे मूलसंघ के आचार्य थे। दर्शनसार में उन्होंने काष्ठासंघ, माथुरसंघ और यापनीयसंघ आदि सभी दिगम्बर संघों की उत्पत्ति बतलाई है और उन्हें मिथ्यात्वी कहा है परंतु मूलसंघ के विषय में कुछ नहीं कहा है। अर्थात् उनके विश्वास के अनुसार यही मूल से चला आया हुआ असली संघ है ।

दर्शनसार की 43 वीं गाथा में लिखा है कि यदि आचार्य पद्मनन्दि (कुन्दकुन्द) सीमन्धर स्वामी द्वारा प्राप्त दिव्यज्ञान के द्वारा बोध न देते तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते। इससे यह भी निश्चय हो जाता है कि वे श्री कुन्दकुन्दाचार्य की आम्नाय में थे।

॥ श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नमः ॥

श्रीमद्-देवसेनाचार्य-प्रणीत

आराधनासार

विमलयरगुणसमिद्धं सिद्धं सुरसेणवंदियं सिरसा।
णमिऊण महावीरं वोच्छं आराहणासारं ॥1॥

गाथार्थ- {अहं} मैं देवसेनाचार्य, **[विमलयरगुणसमिद्धं]** अत्यन्त निर्मल शुद्ध, चैतन्य गुण से परिपूर्ण, **[सुरसेणवंदियं]** सौधर्मेन्द्र आदि चतुर्णिकाय की देव-सेनाओं से नमस्कृत और **[महावीरं]** अपने तथा अन्य आराधक पुरुषों के ध्यान रूपी रण की रंगभूमि में अनादिकाल से लगे हुए आठ कर्म रूप शत्रु समूह के नष्ट करने में अद्वितीय सुभट **[सिद्धं]** केवलज्ञानादि अनन्त गुणों के प्रादुर्भाव रूप लक्षण से युक्त सिद्ध परमात्मा को **[सिरसा]** सिर से **[णमिऊण]** नमस्कार कर **[आराहणासारं]** सम्यग्दर्शनादि चार आराधनाओं से सारभूत आराधनासार ग्रन्थ को **[वोच्छं]** कहूँगा।

गाथार्थ- मैं देवसेनाचार्य, अत्यन्त निर्मल शुद्ध, चैतन्य गुण से परिपूर्ण, सौधर्मेन्द्र आदि चतुर्णिकाय की देव-सेनाओं से नमस्कृत और अपने तथा अन्य आराधक पुरुषों के ध्यान रूपी रण की रंगभूमि में अनादिकाल से लगे हुए आठ कर्म रूप शत्रु समूह के नष्ट करने में अद्वितीय सुभट केवलज्ञानादि अनन्त गुणों के प्रादुर्भाव रूप लक्षण से युक्त सिद्ध परमात्मा को सिर से

नमस्कार कर सम्यग्दर्शनादि चार आराधनाओं से सारभूत आराधनासार ग्रन्थ को कहूँगा।

आराहणाइसारो तववदंसणणाणचरणसमवाओ।
सो दुब्भेओ उत्तो ववहारो चेग परमट्ठो ॥2॥

गाथार्थ- [तवदंसणणाणचरणसमवाओ] तप, दर्शन, ज्ञान और चारित्र का समूह **[आराहणाइसारो]** आराधनासार है **[सो]** वह आराधनासार **[दुब्भेओ]** दो भेद वाला **[उत्तो]** कहा गया है **[ववहारो चेग परमट्ठो]** एक व्यवहार और एक परमार्थ।

गाथार्थ- तप, दर्शन, ज्ञान और चारित्र का समूह आराधनासार है वह आराधनासार दो भेद वाला कहा गया है एक व्यवहार और एक परमार्थ।

ववहारेण य सारो भणिओ आराहणाचउक्कस्स।
दंसणणाणचरित्तं तवो य जिणभासियं णूणं ॥3॥

गाथार्थ- [णूणं] निश्चय से **[जिणभासियं]** जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ **[दंसणणाणचरित्तं तवो य]** दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप **[ववहारेण]** व्यवहारनय से **[आराहणाचउक्कस्स]** चार आराधनाओं का **[सारो भणिओ]** सार कहा गया है।

गाथार्थ- निश्चय से जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप व्यवहारनय से चार आराधनाओं का सार कहा गया है।

भावाणं सद्दहणं कीरइ जं सुत्तउत्तजुत्तीहिं।

आराहणा हु भणिया सम्मत्ते सा मुणिंदेहिं ॥4॥

गाथार्थ- [सुत्तउत्तजुत्तीहिं] आगम में कही हुई युक्तियों के द्वारा **[भावाणं]** जीवादि पदार्थों का **[जं]** जो **[सद्दहणं]** श्रद्धान **[कीरइ]** किया जाता है **[सा]** वह **[मुणिंदेहिं]** मुनिराजों के द्वारा **[हु]** निश्चय से **[सम्मत्ते]** सम्यग्दर्शन विषयक **[आराहणा]** आराधना **[भणिया]** कही गई है।

गाथार्थ- आगम में कही हुई युक्तियों के द्वारा जीवादि पदार्थों का जो श्रद्धान किया जाता है वह मुनिराजों के द्वारा निश्चय से सम्यग्दर्शन विषयक आराधना कही गई है ।

सुत्तत्थभावणा वा तेसिं भावाणमहिगमो जो वा।
णाणस्स हवदि एसा उत्ता आराहणा सुत्ते ॥5॥

गाथार्थ- [सुत्तत्थभावणा] आगम के अर्थ की भावना **[वा]** अथवा **[तेसिं भावाणं]** उन जीवादि पदार्थों का जो **[अहिगमो]** सम्यग्ज्ञान है **[एसा]** यह **[सुत्ते]** परमागम में **[णाणस्य]** ज्ञान की **[आराहणा]** आराधना **[उत्ता हवदि]** कही गई है।

गाथार्थ- आगम के अर्थ की भावना अथवा उन जीवादि पदार्थों का जो सम्यग्ज्ञान है यह परमागम में ज्ञान की आराधना कही गई है।

तेरहविहस्स चरणं चारित्तस्सेह भावसुद्धीए।
दुविहअसंजमचाओ चारित्ताराहणा एसा ॥6॥

गाथार्थ- [भावसुद्धीए] भावों की शुद्धि पूर्वक **[इह]** इस आराधना में **[तेरह विहस्स]** तेरह प्रकार के **[चारित्तस्स]** चारित्र

का **[चरणं]** आचरण करना-पालन करना और **[दुविहअसंजमचाओ]** दो प्रकार के असंयम का त्याग करना **[एसा]** यह **[चारित्ताराहणा]** चारित्राराधना **[हवदि]** है ।

गाथार्थ- भावों की शुद्धि पूर्वक इस आराधना में तेरह प्रकार के चारित्र का आचरण करना-पालन करना और दो प्रकार के असंयम का त्याग करना यह चारित्राराधना है ।

बारहविहतवयरणे कीरइ जो उज्जमो ससत्तीए।
सा भणिया जिणसुत्ते तवम्मि आराहणा णूणं ॥7॥

गाथार्थ- [ससत्तीए] अपनी शक्ति के अनुसार **[बारहविहतवयरणे]** बारह प्रकार के तपश्चरण में **[जो उज्जमो]** जो उद्यम **[कीरइ]** किया जाता है **[सा]** वह **[णूणं]** निश्चय से **[जिणसुत्ते]** जिनागम में **[तवम्मि आराहणा]** तप आराधना **[भणिया]** कही गई है।

गाथार्थ- अपनी शक्ति के अनुसार बारह प्रकार के तपश्चरण में जो उद्यम किया जाता है वह निश्चय से जिनागम में तप आराधना कही गई है।

सुद्धणये चउखंधं उत्तं आराहणाए एरिसियं।
सव्ववियप्पविमुक्को सुद्धो अप्पा णिरालंबो ॥8॥

गाथार्थ- [सुद्धणये] निश्चय नय में **[आराहणाए]** आराधना के **[चउखंधं]** सम्यग्दर्शनादि चार भेदों का समूह **[एरिसियं]** ऐसा **[उत्तं]** कहा गया है कि **[सव्ववियप्पविमुक्को]** समस्त विकल्पों

से रहित **[सुद्धो]** शुद्ध और **[णिरालंबो]** बाह्य आलम्बन से रहित **[अप्पा]** आत्मा ही **[आराहणा अत्थि]** आराधना है।

गाथार्थ- निश्चय नय में आराधना के सम्यग्दर्शनादि चार भेदों का समूह ऐसा कहा गया है कि समस्त विकल्पों से रहित शुद्ध और बाह्य आलम्बन से रहित आत्मा ही आराधना है।

सद्दहइ सस्सहावं जाणई अप्पाणमप्पणो सुद्धं।
तं चिय अणुचरइ पुणो इंदियविसये णिरोहित्ता ॥9॥

गाथार्थ- निश्चयाराधना में यह जीव **[सस्सहावं]** अपने स्वभावरूप शुद्धात्मा का **[सद्दहइ]** श्रद्धान करता है, **[अप्पणो]** अपने आप में **[शुद्धं अप्पाणं]** शुद्ध आत्मा को **[जाणइ]** जानता है **[पुणो]** और **[इंदियविसए]** इन्द्रिय विषयों को **[णिरोहित्ता]** संकुचित कर **[तंचिय]** उसी शुद्ध आत्मा में **[अणुचरइ]** अनुचरण करता है-उसी में लीन होता है।

गाथार्थ- निश्चयाराधना में यह जीव अपने स्वभावरूप शुद्धात्मा का श्रद्धान करता है, अपने आप में शुद्ध आत्मा को जानता है और इन्द्रिय विषयों को संकुचित कर उसी शुद्ध आत्मा में अनुचरण करता है-उसी में लीन होता है।

तम्हा दंसणणाणं चारित्तं तह तवो य सो अप्पा।
चइऊण रायदोसे आराहउ सुद्धमप्पाणं ॥10॥

गाथार्थ- [तम्हा] इसलिए **[दंसणणाणं चारित्तं तह तवो य]** दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप **[सो अप्पा]** वह आत्मा ही है।

अतएव **[रायदोसे]** राग और द्वेष को **[चइऊण]** छोड़कर **[सुद्धमप्पाणं]** शुद्ध आत्मा की **[आराहउ]** आराधना करो।

गाथार्थ- इसलिए दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप वह आत्मा ही है। अतएव राग और द्वेष को छोड़कर शुद्ध आत्मा की आराधना करो।

आराहणमाराहं आराहय तह फलं च जं भणियं।
तं सव्वं जाणिज्जो अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥11॥

गाथार्थ- [आराहणं आराहं] आराधन, आराध्य, **[आराहय]** आराधक **[तह]** तथा **[फलं च]** आराधना का फल **[जं भणियं]** जो कहा गया है **[तं सव्वं]** उस सबको **[णिच्छयदो]** निश्चय से **[अप्पाणं चेव]** आत्मा ही **[जाणिज्जो]** जानो।

गाथार्थ- आराधन, आराध्य, आराधक तथा आराधना का फल जो कहा गया है उस सबको निश्चय से आत्मा ही जानो।

पज्जयणयेण भणिया चउव्विहाराहणा हु जा सुत्ते।
सा पुणु कारणभूदा णिच्छयणयदो चउक्कस्स ॥12॥

गाथार्थ- [हु] निश्चय से **[सुत्ते]** परमागम में **[पज्जयणयेण]** भेदनय से **[जा]** जो **[चउव्विहाराहणा]** चार प्रकार की आराधना **[भणिया]** कही गई है **[सा पुणु]** वही आराधना **[णिच्छयणयदो चउक्कस्स]** निश्चयनय से कही जाने वाली चार आराधनाओं का **[कारणभूदा]** कारण **[अत्थि]** है।

गाथार्थ- निश्चय से परमागम में भेदनय से जो चार प्रकार की आराधना कही गई है वही आराधना निश्चयनय से कही जाने वाली चार आराधनाओं का कारण है।

कारणकज्जविभागं मुणिऊण कालपहुदिलद्धीए।
लहिऊण तहा खवओ आराहउ जह भवं मुवइ ॥13॥

गाथार्थ- [कारणकज्जविभागं] कारण और कार्य के विभाग को **[मुणिऊण]** जानकर तथा **[कालपहुदि लद्धीए]** काललब्धियों को **[लहिऊण]** प्राप्त कर **[खवओ]** क्षपक **[तहा]** उस प्रकार **[आराहऊ]** आराधना करे **[जह]** जिस प्रकार **[भवं]** संसार को **[मुवइ]** छोड़ सके।

गाथार्थ- कारण और कार्य के विभाग को जानकर तथा काललब्धियों को प्राप्त कर क्षपक उस प्रकार आराधना करे जिस प्रकार संसार को छोड़ सके।

जीवो भमइ भमिस्सइ भमिओ पुव्वं तु णरयणरतिरियं।
अलहंतो णाणमईं अप्पा आराहणां णाउं ॥14॥

गाथार्थ- [णाणमई] ज्ञानमयी **[अप्पा आराहणां]** आत्माराधना को **[णाउं]** जानकर **[अलहंतो]** नहीं प्राप्त करने वाला **[जीवो]** जीव **[पुव्वं तु]** पहले तो **[णरयणरतिरियं]** नरक, मनुष्य, तिर्यंच और देवगति में **[भमिओ]** भटका है **[भमइ]** वर्तमान में भटक रहा है और **[भमिस्सइ]** आगे भटकेगा।

गाथार्थ- ज्ञानमयी आत्माराधना को जानकर नहीं प्राप्त करने वाला जीव पहले तो नरक, मनुष्य, तिर्यंच और देवगति में भटका है वर्तमान में भटक रहा है और आगे भटकेगा।

संसारकारणाइं अत्थि हु आलंबणाइ बहुयाइं।
चइऊण ताइं खवओ आराहओ अप्पयं सुद्धं ॥15॥

गाथार्थ- [हु] निश्चय से **[संसारकारणाइं]** संसार के कारणभूत **[बहुयाइं]** बहुत से **[आलंबणाइ]** आलम्बन **[अत्थि]** हैं। **[खवओ]** क्षपक **[ताइं]** उन्हें **[चइऊण]** छोड़कर **[सुद्धं]** शुद्ध **[अप्पयं]** आत्मा की **[आराहओ]** आराधना करे।

गाथार्थ- निश्चय से संसार के कारणभूत बहुत से आलम्बन हैं। क्षपक उन्हें छोड़कर शुद्ध आत्मा की आराधना करे।

भेयगया जा उत्ता चउव्विहाराहणा मुणिंदेहिं।
पारंपरेण सावि हु मोक्खस्स य कारणं हवइ ॥16॥

गाथार्थ- [मुणिंदेहिं] मुनिराजों के द्वारा **[भेयगया]** भेद को प्राप्त हुई **[जा]** जो **[चउव्विहाराहणा]** चार प्रकार की आराधना **[उत्ता]** कही गई है **[हु]** निश्चय से **[सावि]** वह भी **[पारंपरेण]** परम्परा से **[मोक्खस्स य]** मोक्ष का **[कारणं]** कारण **[हवइ]** होती है।

गाथार्थ- मुनिराजों के द्वारा भेद को प्राप्त हुई जो चार प्रकार की आराधना कही गई है निश्चय से वह भी परम्परा से मोक्ष का कारण होती है।

णिहयकसाओ भव्वो दंसणवंतो हु णाणसंपण्णो।
दुविहपरिग्गहचत्तो मरणे आराहओ हवइ ॥17॥

गाथार्थ- [णिहयकसाओ] कषायों को नष्ट करने वाला, **[भव्वो]** भव्य, **[दंसणवंतो]** सम्यग्दर्शन से युक्त, **[णाणसंपण्णो]** सम्यग्ज्ञान से परिपूर्ण और **[दुविह परिग्गहचत्तो]** दोनों प्रकार के परिग्रह का त्यागी पुरुष **[मरणे]** मरण पर्यन्त **[हु]** निश्चय से **[आराहओ]** आराधना करने वाला **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- कषायों को नष्ट करने वाला, भव्य, सम्यग्दर्शन से युक्त, सम्यग्ज्ञान से परिपूर्ण और दोनों प्रकार के परिग्रह का त्यागी पुरुष मरण पर्यन्त निश्चय से आराधना करने वाला होता है।

संसारसुहविरत्तो वेरग्गं परमउवसमं पत्तो।
विविहतवतवियदेहो मरणे आराहओ एसो ॥18॥

गाथार्थ- जो **[संसारसुहविरत्तो]** संसार सम्बन्धी सुख से विरक्त है, **[वेरग्गं परमउवसमं पत्तो]** वैराग्य तथा परम उपशम भाव को प्राप्त है और **[विविहतवतवियदेहो]** नाना प्रकार के तपों से जिसका शरीर तपा हुआ है **[एसो]** यह जीव **[मरणे]** मरणपर्यन्त **[आराहओ]** आराधक **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- जो संसार सम्बन्धी सुख से विरक्त है, वैराग्य तथा परम उपशम भाव को प्राप्त है और नाना प्रकार के तपों से जिसका शरीर तपा हुआ है यह जीव मरणपर्यन्त आराधक होता है।

अप्पसहावे णिरओ वज्जियपरदव्वसंगसुक्खरसो।
णिम्महियरायदोसो हवइ आराहओ मरणे ॥19॥

गाथार्थ- जो **[अप्पसहावे णिरओ]** आत्म-स्वभाव में तत्पर है, **[वज्जियपरदव्वसंगसुक्खरसो]** जिसने पर-द्रव्य के संसर्ग से होने वाले सुख की अभिलाषा को छोड़ दिया है और जिसने **[णिम्महियरायदोसो]** राग-द्वेष को नष्ट कर दिया है, ऐसा पुरुष **[मरणे]** मरण-पर्यन्त **[आराहओ]** आराधक **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- जो आत्म-स्वभाव में तत्पर है, जिसने पर-द्रव्य के संसर्ग से होने वाले सुख की अभिलाषा को छोड़ दिया है और जिसने राग-द्वेष को नष्ट कर दिया है, ऐसा पुरुष मरण-पर्यन्त आराधक होता है।

जो रयणत्तयमइओ मुत्तूणं अप्पणो विसुद्धप्पा।
चिंतेइ य परदव्वं विराहओ णिच्छयं भणिओ ॥20॥

गाथार्थ- [जो] जो **[रयणत्तयमइओ]** रत्नत्रय स्वरूप **[अप्पणो]** अपने **[विसुद्धप्पा]** विशुद्ध आत्मा को **[मुत्तूणं]** छोड़कर **[परदव्वं]** पर-द्रव्य की **[चिंतेइय]** चिन्ता करता है, वह **[णिच्छयं]** निश्चय से **[विराहओ]** विराधक **[भणिओ]** कहा गया है।

गाथार्थ- जो रत्नत्रय स्वरूप अपने विशुद्ध आत्मा को छोड़कर पर-द्रव्य की चिन्ता करता है, वह निश्चय से विराधक कहा गया है।

जो णवि बुज्झइ अप्पा णेय परं णिच्छयं समासिज्ज।
तस्स ण बोही भणिया सुसमाही राहणा णेय ॥21॥

गाथार्थ- [जो] जो पुरुष **[णिच्छयं समासिज्ज]** निश्चय नय का आलम्बन कर **[अप्पा]** आत्मा को **[णवि बुज्झइ]** नहीं जानता है और **[परं]** पर को **[णवि बुज्झइ]** नहीं जानता है **[तस्स]** उसके **[ण बोही भणिया]** न बोधि कही गई है, **[ण सुसमाही भणिया]** न सुसमाधि कही गई है और **[णेय आराहणा भणिया]** न आराधना ही कही गई है।

गाथार्थ- जो पुरुष निश्चय नय का आलम्बन कर आत्मा को नहीं जानता है और पर को नहीं जानता है उसके न बोधि कही गई है, न सुसमाधि कही गई है और न आराधना ही कही गई है।

अरिहो संगच्चाओ कसायसल्लेहणा य कायव्वा।
परिसहचमूण विजओ उवसग्गाणं तहा सहणं ॥22॥
इंदियमल्लाण जओ मणगयपसरस्स तह य संजमणं।
काऊण हणउ खवओ चिरभवबद्धाइ कम्माइं ॥23॥

गाथार्थ- [खवओ] क्षपक **[अरिहो]** संन्यास धारण करने के योग्य होता हुआ **[संगच्चाओ]** संगत्याग **[कायव्वा कसायसल्लेहणा]** करने योग्य कषाय सल्लेखना, **[परिसहचमूण विजओ]** परिषह रूपी सेना का विजय **[तहा उवसग्गाणं सहणं]** तथा उपसर्गों का सहन, **[इंदियमल्लाण जओ]** इन्द्रिय रूपी मल्लों को जीतना **[तहय]** और **[मणगयपसरस्स संजमणं]** मन रूपी हाथी के प्रसार का

नियन्त्रण **[काऊण]** करके **[चिरभवबद्धाइ]** चिरकाल से अनेक भवों में बँधे हुए **[कम्माइं]** कर्मों को **[हणउ]** नष्ट करे।

गाथार्थ- क्षपक संन्यास धारण करने के योग्य होता हुआ संगत्याग करने योग्य कषाय सल्लेखना, परिषह रूपी सेना का विजय तथा उपसर्गों का सहन, इन्द्रिय रूपी मल्लों को जीतना और मन रूपी हाथी के प्रसार का नियन्त्रण करके चिरकाल से अनेक भवों में बँधे हुए कर्मों को नष्ट करे।

छंडियगिहवावारो विमुक्कपुत्ताइसयणसंबंधो।
जीवियधणासमुक्को अरिहो सो होइ सण्णासे ॥24॥

गाथार्थ- [छंडियगिहवावारो] जिसने गृह-सम्बन्धी व्यापार छोड़ दिये हैं, **[विमुक्कपुत्ताइसयणसंबंधो]** जिसने पुत्र आदि आत्मीय जनों से सम्बन्ध छोड़ दिया है और **[जीवियधणासमुक्को]** जो जीवित तथा धन की आशा से मुक्त है **[सो]** वह **[सण्णासे]** संन्यास के विषय में **[अरिहो]** अर्ह (योग्य) **[होइ]** होता है।

गाथार्थ- जिसने गृह-सम्बन्धी व्यापार छोड़ दिये हैं, जिसने पुत्र आदि आत्मीय जनों से सम्बन्ध छोड़ दिया है और जो जीवित तथा धन की आशा से मुक्त है वह संन्यास के विषय में अर्ह (योग्य) होता है।

जरवग्घिणी ण चंपइ जाम ण वियलाइ हुंति अक्खाइं।
बुद्धीजाम ण णासइ आउजलं जाम ण परिगलई ॥25॥
आहारासणणिद्दाविजओ जावत्थि अप्पणो णूणं।
अप्पाणमप्पणोण य तरइ य णिज्जावओ जाम ॥26॥

जाम ण सिढिलायंति य अंगोवंगाइ संधिबंधाइं।
जाम ण देहो कंपइ मिच्चुस्स भयेण भीउव्व ॥27॥
जा उज्जमो ण वियलइ संजमतवणाणझाणजोएसु।
तावरिहो सो पुरिसो उत्तमठाणस्स संभवई ॥28॥

गाथार्थ- [जाम] जब तक **[जरवग्घिणी]** वृद्धावस्था रूपी व्याघ्री **[ण चंपइ]** आक्रमण नहीं करती, **[अक्खाइं]** इन्द्रियाँ **[वियलाइं]** विकल **[ण हुंति]** नहीं हो जातीं, **[जाम बुद्धी ण णासइ]** जब तक बुद्धि नष्ट नहीं होती **[जाम आउजलं ण परिगलई]** जब तक आयु रूपी जल नहीं गलता, **[णूणं]** निश्चय से **[अप्पणो आहारासण णिद्दा णिजओ जावत्थि]** जब तक अपने आपके आहार, आसन और निद्रा पर विजय है, **[जाम]** जब तक **[णिज्जावओ अप्पाणमप्पणोण य तरइ य]** अपना आत्मा स्वयं निर्यापकाचार्य बनकर अपने आपको नहीं तारता है, **[जाम अंगोवंगाइ संधि बंधाइं य ण सिढिलायंति]** जब तक अंगोपांग और सन्धियों के बन्धन ढीले नहीं पड़ जाते, **[जाम]** जब तक **[देहो]** शरीर **[मिच्चुस्स]** मृत्यु **[भयेण]** भय से **[भीउव्व]** डरे हुए के समान **[ण कंपइ]** नहीं काँपने लगता है तथा **[संजम तवणाणझाणजोएसु]** संयम, तप, ज्ञान, ध्यान और योग में **[जा उज्जमो ण वियलइ]** जब तक उद्यम नष्ट नहीं होता **[ताव]** तब तक **[सो]** वह **[पुरिसो]** पुरुष **[उत्तमठाणस्स]** उत्तम स्थान संन्यास के **[अरिहो]** योग्य **[संभवई]** होता है।

गाथार्थ- जब तक वृद्धावस्था रूपी व्याघ्री आक्रमण नहीं करती, इन्द्रियाँ विकल नहीं हो जातीं, जब तक बुद्धि नष्ट नहीं होती जब

तक आयु रूपी जल नहीं गलता, निश्चय से जब तक अपने आपके आहार, आसन और निद्रा पर विजय है, जब तक अपना आत्मा स्वयं निर्यापकाचार्य बनकर अपने आपको नहीं तारता है, जब तक अंगोपांग और सन्धियों के बन्धन ढीले नहीं पड़ जाते, जब तक शरीर मृत्यु भय से डरे हुए के समान नहीं काँपने लगता है तथा संयम, तप, ज्ञान, ध्यान और योग में जब तक उद्यम नष्ट नहीं होता तब तक वह पुरुष उत्तम स्थान संन्यास के योग्य होता है।

सो सण्णासे उत्तो णिच्छयवाईहिं णिच्छयणएण।
ससहावे विण्णासो सवणस्स वियप्परहियस्स ॥29॥

गाथार्थ- **[वियप्परहियस्स]** विकल्प रहित जिस **[सवणस्स]** मुनि को **[ससहावे]** अपने स्वभाव में **[विण्णासे]** अवस्थान है **[सो]** वह **[णिच्छयवाईहिं]** निश्चयवादियों के द्वारा **[णिच्छयणएण]** निश्चय नय से **[सण्णासे]** संन्यास के विषय में **[अरिहो]** अर्ह (योग्य) **[उत्तो]** कहा गया है ।

गाथार्थ- विकल्प रहित जिस मुनि को अपने स्वभाव में अवस्थान है वह निश्चयवादियों के द्वारा निश्चय नय से संन्यास के विषय में अर्ह (योग्य) कहा गया है ।

खित्ताइबाहिराणां अब्भिंतर मिच्छपहुदिगंथाणं।
चाए काऊण पुणो भावह अप्पा णिरालंबो ॥30॥

गाथार्थ- **[खित्ताइबाहिराणां]** क्षेत्र आदि बाह्य और **[मिच्छपहुदि अब्भिंतरगंथाणं]** मिथ्यात्व आदि अन्तरंग परिग्रहों

का **[चाए]** त्याग **[काउण]** करके **[पुणो]** पश्चात् **[णिरालंबो]** निरालम्ब **[अप्पा]** आत्मा की **[भावह]** भावना करो ।

गाथार्थ- क्षेत्र आदि बाह्य और मिथ्यात्व आदि अन्तरंग परिग्रहों का त्याग करके पश्चात् निरालम्ब आत्मा की भावना करो ।

संगच्चाएण फुडं जीवो परिणवइ उवसमो परमो।
उवसमगओ हु जीवो अप्पसरूवे थिरो हवइ ॥31॥

गाथार्थ- [संगच्चाएण] परिग्रह के त्याग से **[जीवो]** जीव **[फुडं]** स्पष्ट ही **[परमो उपसमो]** परम उपशम भाव को **[परिणवइ]** प्राप्त होता है **[दु]** और **[उपसमगओ]** उपशम भाव को प्राप्त हुआ जीव **[अप्पसरूवे]** आत्म-स्वरूप में **[थिरो]** स्थिर **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- परिग्रह के त्याग से जीव स्पष्ट ही परम उपशम भाव को प्राप्त होता है और उपशम भाव को प्राप्त हुआ जीव आत्म-स्वरूप में स्थिर होता है।

जाम ण गंथंछंडइ ताम ण चित्तस्स मलिणिमा मुंचइ।
दुविहपरिग्गहचाए णिम्मलचित्तो हवइ खवओ ॥32॥

गाथार्थ- [आराहओ] आराधक **[जाम]** जब तक **[गंथं]** परिग्रह को **[ण छंडइ]** नहीं छोड़ता है **[ताम]** तब तक **[चित्तस्य]** मन की **[मलिणिमा]** मलिनता को **[ण मुंचइ]** नहीं छोड़ता है **[खवओ]** क्षपक **[दुविह परिग्गहचाए]** दो प्रकार के परिग्रह के त्याग से ही **[णिम्मलचित्तो]** निर्मल चित्त **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- आराधक जब तक परिग्रह को नहीं छोड़ता है तब तक मन की मलिनता को नहीं छोड़ता है क्षपक दो प्रकार के परिग्रह के त्याग से ही निर्मल चित्त होता है।

देहो बाहिरगंथो अण्णो अक्खाणं विसयअहिलासो।
तेसिं चाए खवओ परमत्थे हवइ णिग्गंथो ॥33॥

गाथार्थ- [देहो बाहिरगंथो] शरीर बाह्य परिग्रह है और **[अक्खाणं विसयअहिलासो]** इन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा होना **[अण्णो अत्थि]** अन्तरंग परिग्रह है। **[तेसिं]** उन (दोनों परिग्रहों) का **[चाए]** त्याग होने पर **[खवओ]** क्षपक **[परमत्थे]** परमार्थ से **[णिग्गंथो]** निर्ग्रन्थ **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- शरीर बाह्य परिग्रह है और इन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा होना अन्तरंग परिग्रह है। उन (दोनों परिग्रहों) का त्याग होने पर क्षपक परमार्थ से निर्ग्रन्थ होता है।

इंदियमयं सरीरं णियणियविसएसु तेसु गमणिच्छा।
ताणुवरिं हयमोहो मंदकसाई हवइ खवओ ॥34॥

गाथार्थ- [इंदियमयं सरीरं] इन्द्रियों से तन्मय शरीर **[तेसु णियणियविसयेसु]** अपने-अपने विषयों में **[गमनिच्छा]** गमनशील है। **[ताणुवरिं]** उन विषयों के ऊपर **[हयमोहो]** जिसका मोह नष्ट हो गया है, ऐसा **[खवओ]** क्षपक **[मंदकसाई]** मन्दकषायी **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- इन्द्रियों से तन्मय शरीर अपने-अपने विषयों में गमनशील है। उन विषयों के ऊपर जिसका मोह नष्ट हो गया है, ऐसा क्षपक मन्दकषायी होता है।

सल्लेहणा सरीरे बाहिरजोएहि जा कया मुणिणा।
सयलावि सा णिरत्था जाम कसाए ण सल्लिहदि ॥35॥

गाथार्थ- [मुणिणा] मुनि के द्वारा **[बाहिरजोएहि]** (आतापन आदि) बाह्य योगों के द्वारा **[सरीरे जा सल्लेखना कया]** शरीर की जो सल्लेखना की गई है **[सा सयलावि]** वह सबकी सब **[ताव]** तब तक **[निरत्था]** निरर्थक है **[जाम]** जब तक वह **[कसाए ण सल्लिहदि]** कषायों की सल्लेखना नहीं करता।

गाथार्थ- मुनि के द्वारा (आतापन आदि) बाह्य योगों के द्वारा शरीर की जो सल्लेखना की गई है वह सबकी सब तब तक निरर्थक है जब तक वह कषायों की सल्लेखना नहीं करता।

अत्थि कसाया बलिया सुदुज्जया जेहि तिहुवणं सयलं।
भमइ भमडिज्जंतो चउगइभवसायरे भीमे ॥36॥

गाथार्थ- वे **[कसाया]** कषाय **[बलिया]** अत्यन्त बलवान और **[सुदुज्जया]** अत्यन्त कठिनाई से जीतने योग्य **[अत्थि]** हैं **[जेहि]** जिनके द्वारा **[भमडिज्जंतो]** घुमाया हुआ **[सयलं तिहुवणं]** समस्त त्रिभुवन **[भीमे चउगइभवसायरे]** भयंकर चतुर्गति रूप संसार-सागर में **[भमइ]** भ्रमण कर रहा है।

गाथार्थ- वे कषाय अत्यन्त बलवान और अत्यन्त कठिनाई से जीतने योग्य हैं जिनके द्वारा घुमाया हुआ समस्त त्रिभुवन भयंकर चतुर्गति रूप संसार-सागर में भ्रमण कर रहा है।

जाम ण हणइ कसाए स कसाई णेव संजमी होइ।
संजमरहियस्स गुणा ण हुंति सव्वे विसुद्धियरा ॥37॥

गाथार्थ- [कसाई] कषाय से सहित **[स]** वह क्षपक **[जाम]** जब तक **[कसाए ण हणइ]** कषायों को नष्ट नहीं करता है **[ताव]** तब तक वह **[संजमी]** संयमी **[णेव होइ]** नहीं होता है और **[संजमरहियस्स]** संयम से रहित क्षपक के **[सव्वे गुणा]** समस्त गुण **[विशुद्धियरा]** विशुद्धि को करने वाले **[ण हुंति]** नहीं होते।

गाथार्थ- कषाय से सहित वह क्षपक जब तक कषायों को नष्ट नहीं करता है तब तक वह संयमी नहीं होता है और संयम से रहित क्षपक के समस्त गुण विशुद्धि को करने वाले नहीं होते।

तम्हा णाणीहिं सया किसियरणं हवइ तेसु कायव्वं।
किसिएसु कसाएसु अ सवणो झाणे थिरो हवइ ॥38॥

गाथार्थ- [तम्हा] इसलिए **[णाणीहिं]** ज्ञानी जीवों के द्वारा **[तेसु]** उन कषायों के विषय में **[सया]** सदा **[किसियरणं]** कृशीकरण (क्षीणीकरण) **[कायव्वं]** करने योग्य **[हवइ]** है, क्योंकि **[कसाएसु य]** कषायों के **[किसिएसु]** कृश किये जाने पर **[सवणो]** मुनि **[झाणे]** ध्यान में **[थिरो]** स्थिर **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- इसलिए ज्ञानी जीवों के द्वारा उन कषायों के विषय में सदा कृशीकरण (क्षीणीकरण) करने योग्य है, क्योंकि कषायों के कृश किये जाने पर मुनि ध्यान में स्थिर होता है।

सल्लेहिया कसाया करंति मुणिणो ण चित्तसंखोहं।
चित्तक्खोहेण विणा पडिवज्जदि उत्तमं धम्मं ॥39॥

गाथार्थ- [सल्लेहिया] छोड़ी हुई **[कसाया]** कषायें **[मुणिणो]** मुनि के **[चित्तसंखोहं]** चित्त में क्षोभ **[ण करंति]** नहीं करती हैं और **[चित्तक्खोहेण विणा]** चित्त क्षोभ में नहीं होने से मुनि **[उत्तमं धम्मं]** उत्तम धर्म को **[पडिवज्जदि]** प्राप्त होता है।

गाथार्थ- छोड़ी हुई कषायें मुनि के चित्त में क्षोभ नहीं करती हैं और चित्त क्षोभ में नहीं होने से मुनि उत्तम धर्म को प्राप्त होता है।

सीयाई बावीसं परिसहसुहडा हवंति णायव्वा।
जेयव्वा ते मुणिणा वरउवसमणाणखग्गेण ॥40॥

गाथार्थ- [सीयाई] शीत आदि **[बावीसं]** बाईस **[परिसहसुहडा]** परीषहरूपी सुभट **[णायव्वा]** जानने योग्य **[हवंति]** हैं, **[मुणिणा]** मुनि के द्वारा **[ते]** वे परिषह रूपी सुभट **[वरउपसमणाणखग्गेण]** उत्कृष्ट उपशमभाव रूपी ज्ञान खड्ग से **[जेयव्वा]** जीतने योग्य हैं।

गाथार्थ- शीत आदि बाईस परीषहरूपी सुभट जानने योग्य हैं, मुनि के द्वारा वे परिषह रूपी सुभट उत्कृष्ट उपशमभाव रूपी ज्ञान खड्ग से जीतने योग्य हैं।

परिसहसुहडेहिं जिया केई सण्णासओहवे भग्गा।
सरणं पइसंति पुणो सरीरपडियारसुक्खस्स ॥41॥

गाथार्थ- **[सण्णासओहवे]** संन्यास रूपी युद्ध में **[परीसहसुहडेहिं]** परीषह रूपी सुभटों के द्वारा **[जिया]** पराजित **[केई]** कितने ही लोग **[भग्गा]** भागकर **[पुणो]** फिर से **[सरीरपडियारसुक्खस्स]** शरीर के प्रतीकार-भोजन-वस्त्रादि विषय सुख की **[सरणं]** शरण में **[पइसंति]** प्रवेश करते हैं।

गाथार्थ- संन्यास रूपी युद्ध में परीषह रूपी सुभटों के द्वारा पराजित कितने ही लोग भागकर फिर से शरीर के प्रतीकार-भोजन-वस्त्रादि विषय सुख की शरण में प्रवेश करते हैं।

दुक्खाइं अणेयाइं सहियाई परवसेण संसारे।
इण्हं सवसो विसहसु अप्पसहावे मणो किच्चा ॥42॥

गाथार्थ- हे आत्मन्! तूने **[परवसेण]** पराधीन हो **[संसारे]** संसार में **[अणेयाइं]** अनेक **[दुक्खाइं]** दुःख **[सहियाई]** सहन किये **[इण्हं]** अब **[अप्पसहावे]** आत्म-स्वभाव में **[मणो किच्चा]** मन लगाकर **[सवसो]** स्वाधीनता पूर्वक **[विसहसु]** सहन कर।

गाथार्थ- हे आत्मन्! तूने पराधीन हो संसार में अनेक दुःख सहन किये अब आत्म-स्वभाव में मन लगाकर स्वाधीनता पूर्वक सहन कर।

अइतिव्ववेयणाए अक्कंतो कुणसि भावणा सुसमा।
जइ तो णिहणसि कम्मं असुहं सव्वं खणद्धेण ॥43॥

गाथार्थ- हे आत्मन्! **[अइतिव्ववेयणाए]** अत्यन्त तीव्र वेदना से **[अक्कंतो]** आक्रान्त हुआ तू **[जइ]** यदि **[सुसमा भावणा]** मध्यस्थ भावना **[कुणसि]** करता है **[तो]** तो तू **[खणद्धेण]** आधे क्षण में **[सव्वं]** समस्त **[असुहं]** अशुभ **[कम्मं]** कर्म को **[णिहणसि]** नष्ट कर सकता है।

गाथार्थ- हे आत्मन्! अत्यन्त तीव्र वेदना से आक्रान्त हुआ तू यदि मध्यस्थ भावना करता है तो तू आधे क्षण में समस्त अशुभ कर्म को नष्ट कर सकता है।

परिसहभडाण भीया पुरिसा छंडंति चरणरणभूमी।
भुवि उवहासं पविया दुक्खाणं हुंति ते णिलया ॥44॥

गाथार्थ- **[परिसहभडाण]** परीषह रूपी सुभटों से **[भीया]** डरे हुए जो **[पुरिसा]** पुरुष **[चरणरणभूमी]** चारित्र रूपी रणभूमि को **[छंडंति]** छोड़ देते हैं **[ते]** वे **[भुवि]** इस लोक में **[उवहासं पविया]** उपहास को प्राप्त होते हैं और परलोक में **[दुक्खाणं णिलया]** दुःखों के स्थान **[हुंति]** होते हैं।

गाथार्थ- परीषह रूपी सुभटों से डरे हुए जो पुरुष चारित्र रूपी रणभूमि को छोड़ देते हैं वे इस लोक में उपहास को प्राप्त होते हैं और परलोक में दुःखों के स्थान होते हैं।

परिसहपरचक्कभिओ जइ तो पइसेहि गुत्तितयगुत्तिं।
ठाणं कुण सुसहावे मोक्खगयं कुणसु मणवाणं ॥45॥

गाथार्थ- हे क्षपक! **[जइ]** यदि तू **[परिसहपरचक्कभिओ]** परीषह रूपी परचक्र-शत्रु सेना से भीत है **[तो]** तो **[गुत्तितयगुत्तिं]** तीन गुप्ति रूपी दुर्ग में **[पइसेहि]** प्रवेश कर **[ससहावे]** अपने स्वभाव में **[ठाणं कुण]** स्थान कर और **[मणवाणं]** मन रूपी बाण को **[मोक्खगयं]** मोक्षगत **[कुणसु]** कर।

गाथार्थ- हे क्षपक! यदि तू परीषह रूपी परचक्र-शत्रु सेना से भीत है तो तीन गुप्ति रूपी दुर्ग में प्रवेश कर अपने स्वभाव में स्थान कर और मन रूपी बाण को मोक्षगत कर।

परिसहदवग्गितत्तो पइसइ जइ णाणसरवरे जीवो।
ससहावजलपसित्तो णिव्वाणं लहइ अवियप्पो ॥46॥

गाथार्थ- [परिसहदवग्गितत्तो] परीषह रूपी अग्नि से संतप्त **[जीवो]** जीव **[जइ]** यदि **[णाणसरवरे]** ज्ञान रूपी सरोवर में **[पइसइ]** प्रवेश करता है तो **[ससहावजलपसित्तो]** स्वभाव रूपी जल से सींचा जाकर **[अवियप्पो]** निर्विकल्प होता हुआ **[णिव्वाणं]** मोक्ष को **[लहइ]** प्राप्त होता है।

गाथार्थ- परीषह रूपी अग्नि से संतप्त जीव यदि ज्ञान रूपी सरोवर में प्रवेश करता है तो स्वभाव रूपी जल से सींचा जाकर निर्विकल्प होता हुआ मोक्ष को प्राप्त होता है।

जइ हुंति कहवि जइणो उवसग्गा बहुविहा हु दुहजणया।
ते सहियव्वा णूणं समभावणणाणचित्तेण ॥47॥

गाथार्थ- [जइ] यदि **[कहवि]** किसी प्रकार **[जइणो]** मुनि के **[दुहजणया]** दुःख को उत्पन्न करने वाले **[बहुविहा]** नाना प्रकार के **[उपसग्गा]** उपसर्ग **[हु]** निश्चय से **[हुंति]** होते हैं तो **[समभावणणाणचित्तेण]** चित्त में समताभाव को धारण करने वाले मुनि के द्वारा **[ते]** वे परिषह **[णूणं]** निश्चय से **[सहियव्वा]** सहन करने योग्य हैं।

गाथार्थ- यदि किसी प्रकार मुनि के दुःख को उत्पन्न करने वाले नाना प्रकार के उपसर्ग निश्चय से होते हैं तो चित्त में समताभाव को धारण करने वाले मुनि के द्वारा वे परिषह निश्चय से सहन करने योग्य हैं।

णाणमयभावणाए भवियचित्तेहिं पुरिससीहेहिं।
सहिया महोवसग्गा अचेयणादीय चउभेया ॥48॥

गाथार्थ- [णाणमयभावणाए] ज्ञान के द्वारा रचित भावना से **[भावियचित्तेहिं]** वासित चित्त वाले **[पुरिससीहेहिं]** श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा **[अचेयणादीय]** अचेतन आदिक **[चउभेया]** चार प्रकार के **[महोवसग्गा]** बड़े-बड़े उपसर्ग **[सहिया]** सहन किये गये हैं।

गाथार्थ- ज्ञान के द्वारा रचित भावना से वासित चित्त वाले श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा अचेतन आदिक चार प्रकार के बड़े-बड़े उपसर्ग सहन किये गये हैं।

सिवभूइणा विसहिओ महोवसग्गो हु चेयणारहिओ।
सुकुमालकोसलेहि य तिरियंचकओ महाभीमो ॥49॥

गाथार्थ- [हु] निश्चय से **[सिवभूइणा]** शिवभूति मुनि के द्वारा **[चेयणारहिओ]** अचेतनकृत **[महोवसग्गो]** महान उपसर्ग **[विसहिओ]** सहन किया गया है **[य]** और **[सुकुमालकोसलेहि]** सुकुमाल तथा सुकौशल मुनियों के द्वारा **[तिरियंचकओ]** तिर्यंचों के द्वारा किया हुआ **[महाभीमो]** महान भयंकर महोपसर्ग सहन किया गया है।

गाथार्थ- निश्चय से शिवभूति मुनि के द्वारा अचेतनकृत महान उपसर्ग सहन किया गया है और सुकुमाल तथा सुकौशल मुनियों के द्वारा तिर्यंचों के द्वारा किया हुआ महान भयंकर महोपसर्ग सहन किया गया है।

गुरुदत्तपंडवेहिं य गयवरकुमरेहिं तह य अवरेहिं।
माणुसकउ उवसग्गो सहिओ हु महाणुभावेहिं ॥50॥

गाथार्थ- [हु] निश्चय से **[गुरुदत्तपंडवेहिं]** गुरुदत्त तथा पाण्डवों ने **[गयवरकुमरेहिं]** गजवर कुमार ने **[तह य]** और **[अवरेहिं]** अन्य **[महाणुभावेहिं]** महानुभावों ने **[माणुसकउ]** मनुष्यकृत **[उवसग्गो]** उपसर्ग **[सहिओ]** सहन किया है।

गाथार्थ- निश्चय से गुरुदत्त तथा पाण्डवों ने गजवर कुमार ने और अन्य महानुभावों ने मनुष्यकृत उपसर्ग सहन किया है।

अमरकओ उवसग्गो सिरिदत्तसुवण्णभद्दआईहिं।
समभावणाए सहिओ अप्पाणं झायमाणेहिं ॥51॥

गाथार्थ- [अप्पाणं] आत्मा का **[झायमाणेहिं]** ध्यान करते हुए **[सिरदित्तसुवण्णभद्दआईहिं]** श्रीदत्त तथा सुवर्णभद्र आदि मुनियों ने **[समभावणाए]** समभावना से **[अमरकओ]** देवकृत, **[उवसग्गो]** उपसर्ग **[सहिओ]** सहन किया है।

गाथार्थ- आत्मा का ध्यान करते हुए श्रीदत्त तथा सुवर्णभद्र आदि मुनियों ने समभावना से देवकृत, उपसर्ग सहन किया है।

एएहिं अवरेहिं य जहं सहिया थिरमणेहिं उवसग्गा।
विसहसु तुमंपि मुणिवर अप्पसहावे मणं काऊ ॥52॥

गाथार्थ- [मुणिवर] हे मुनि श्रेष्ठ! **[थिरमणेहिं]** स्थिर चित्त के धारक **[एएहिं]** इन सुकुमाल आदि ने **[य]** और **[अवरेहिं]** अन्य संजयन्त आदि मुनियों ने **[जहं]** जिस प्रकार **[उवसग्गा]** उपसर्ग **[सहिया]** सहन किये हैं **[तहं]** उसी प्रकार **[तुमंपि]** तुम भी **[अप्पसहावे]** आत्मस्वभाव में **[मणं काऊ]** मन लगाकर **[विसहसु]** सहन करो।

गाथार्थ- हे मुनि श्रेष्ठ! स्थिर चित्त के धारक इन सुकुमाल आदि ने और अन्य संजयन्त आदि मुनियों ने जिस प्रकार उपसर्ग सहन किये हैं उसी प्रकार तुम भी आत्मस्वभाव में मन लगाकर सहन करो।

इंदियवाहेहिं हया सरपीडापीडियंगचलचित्ता।
कत्थवि ण कुणंति रई विसयवणं जंति जणहरिणा ॥53॥

गाथार्थ- [इंदियवाहेहिं] इन्द्रिय रूपी शिकारियों के द्वारा **[हया]** ताड़ित तथा **[सरपीडापीडियंगचलचित्ता]** कामरूपी बाण की पीड़ा से पीड़ित शरीर होने के कारण चंचल चित्त **[जणहरिणा]** मनुष्यरूपी हरिण **[कत्थवि]** कहीं भी **[रई]** प्रीति **[ण कुणंति]** नहीं करते हैं और **[विसयवणं]** विषयरूपी वन की ओर **[जंति]** जाते हैं।

गाथार्थ- इन्द्रिय रूपी शिकारियों के द्वारा ताड़ित तथा कामरूपी बाण की पीड़ा से पीड़ित शरीर होने के कारण चंचल चित्त मनुष्यरूपी हरिण कहीं भी प्रीति नहीं करते हैं और विषयरूपी वन की ओर जाते हैं।

सव्वं चायं काऊ विसए अहिलससि गहियसण्णासे।
जइ तो सव्वं अहलं दंसण णाणं तवं कुणसि ॥54॥

गाथार्थ- [सव्वं चायं काऊ] सर्व त्याग कर **[गहियसण्णासे]** संन्यास के ग्रहण करने पर भी **[जइ]** यदि तू **[विसए अहिलससि]** विषयों की अभिलाषा करता है **[तो]** तो **[सव्वं]** समस्त **[दंसण णाणं तवं]** दर्शन, ज्ञान और तप को **[अहलं]** निष्फल **[कुणसि]** करता है।

गाथार्थ- सर्व त्याग कर संन्यास के ग्रहण करने पर भी यदि तू विषयों की अभिलाषा करता है तो समस्त दर्शन, ज्ञान और तप को निष्फल करता है।

इंदियविसयवियारा जाम ण तुट्टंति मणगया खवओ।
ताव ण सक्कइ काउं परिहारो णिहिलदोसाणं ॥55॥

गाथार्थ- [मणगया] मन में स्थित **[इंदियविसयवियारा]** इन्द्रिय विषय सम्बन्धी विकार **[जाम]** जब तक **[ण तुट्टंति]** नहीं टूटते हैं-नष्ट नहीं होते हैं **[ताव]** तब तक **[खवओ]** क्षपक **[णिहिलदोसाणं]** समस्त दोषों का **[परिहारो]** त्याग **[काउं ण सक्कइ]** नहीं कर सकता।

गाथार्थ- मन में स्थित इन्द्रिय विषय सम्बन्धी विकार जब तक नहीं टूटते हैं-नष्ट नहीं होते हैं तब तक क्षपक समस्त दोषों का त्याग नहीं कर सकता।

इंदियमल्लेहिं जिया अमरासुरणरवराण संघाया।
सरणं विसयाण गया तत्थवि मण्णंति सुक्खाइ ॥56॥

गाथार्थ- [इंदियमल्लेहिं] इन्द्रिय रूपी सुभटों के द्वारा **[जिया]** पराजित **[अमरासुरणरवराण]** देव, धरणेन्द्र और श्रेष्ठ मनुष्यों के **[संघाया]** समूह **[विसयाण]** विषयों की **[सरणं]** शरण को **[गया]** प्राप्त होते हैं तथा **[तत्थपि]** उन्हीं में **[सुक्खाइ]** सुख **[मण्णंति]** मानते हैं।

गाथार्थ- इन्द्रिय रूपी सुभटों के द्वारा पराजित देव, धरणेन्द्र और श्रेष्ठ मनुष्यों के समूह विषयों की शरण को प्राप्त होते हैं तथा उन्हीं में सुख मानते हैं।

इंदियगयं ण सुक्खं परदव्वसमागमे हवे जम्हा।
तम्हा इंदियविरई सुणाणिणो होइ कायव्वा ॥57॥

गाथार्थ- हे क्षपक! **[इंदियगयं]** इन्द्रियों से होने वाला **[सुक्खं]** सुख **[सुक्खं ण]** सुख नहीं है **[जम्हा]** क्योंकि वह **[परदव्वसमागमे]** पर द्रव्य के संयोग से होता है **[तम्हा]** इसलिए **[सुणाणिणो]** सम्यग्ज्ञानी जीव को **[इंदियविरई]** इन्द्रिय विषयों से विरक्ति **[कायव्वा होइ]** करने योग्य है।

गाथार्थ- हे क्षपक! इन्द्रियों से होने वाला सुख सुख नहीं है क्योंकि वह पर द्रव्य के संयोग से होता है इसलिए सम्यग्ज्ञानी जीव को इन्द्रिय विषयों से विरक्ति करने योग्य है।

इंदियसेणा पसरइ मणणरवइपेरिया ण संदेहो।
तम्हा मणसंजमणं खवएण य हवदि कायव्वं ॥58॥

गाथार्थ- [जम्हा] क्योंकि **[मणणरवइपेरिया]** मन रूपी राजा के द्वारा प्रेरित **[इंदियसेना]** इन्द्रिय रूपी सेना **[पसरइ]** फैल रही है **[ण संदेहो]** इसमें संदेह नहीं है **[तम्हा]** इसलिए **[खवयेण य]** क्षपक को **[मणसंजमणं]** मन का नियन्त्रण **[कायव्वं]** करने योग्य **[हवदि]** है।

गाथार्थ- क्योंकि मन रूपी राजा के द्वारा प्रेरित इन्द्रिय रूपी सेना फैल रही है इसमें संदेह नहीं है इसलिए क्षपक को मन का नियन्त्रण करने योग्य है।

मणणरवइ सुहुभुंजइ अमरासुरखगणरिंदसंजुत्तं।
णिमिसेणेक्केण जयं तस्सत्थि ण पडिभडो कोइ ॥59॥

गाथार्थ- **[मणणरवइ]** मन रूपी राजा **[अमरासुरखगणरिंदसंजुत्तं]** देव, दैत्य, विद्याधर और राजा आदि से सहित **[जयं]** जगत् को **[णिमिसेणेक्केण]** एक निमेष मात्र में **[सुहुभुंजइ]** अपने भोग के योग्य कर लेता है **[तस्स]** उस मन का **[पडिभडो]** प्रतिमल्ल **[कोई ण अत्थि]** कोई भी नहीं है।

गाथार्थ- मन रूपी राजा देव, दैत्य, विद्याधर और राजा आदि से सहित जगत् को एक निमेष मात्र में अपने भोग के योग्य कर लेता है उस मन का प्रतिमल्ल कोई भी नहीं है।

मणणरवइणो मरणे मरंति सेणाइं इंदियमयाइ।
ताणं मरणेण पुणो मरंति णिस्सेसकम्माइ ॥60॥
तेसिं मरणे मुक्खो मुक्खे पावेइ सासयं सुक्खं।
इंदियविसयविमुक्कं तम्हा मणमारणं कुणइ ॥61॥

गाथार्थ- **[मणणरवइणो]** मन रूपी राजा का **[मरणे]** मरण होने पर **[इंदियमयाइ]** इन्द्रिय रूप **[सेणाइं]** सेनाएँ **[मरंति]** मर जाती हैं **[ताणं]** उनके **[मरणेण]**मरण के **[पुणो]** पश्चात् **[णिस्सेसकम्माणि]** समस्त कर्म **[मरंति]** मर जाते हैं-नष्ट हो जाते हैं **[तेसिं]** कर्मों का **[मरणे]** मरण होने पर **[मुक्खो]** मोक्ष होता है और **[मुक्खे]** मोक्ष में **[इंदिय विसयविमुक्कं]** इन्द्रियों के विषयों से रहित **[सासयं]** शाश्वत नित्य **[सुक्ख]** सुख **[पावेइ]** प्राप्त होता है **[तम्हा]** इसलिए **[मणमारणं]** मन का मरण **[कुणइ]** करो।

गाथार्थ- मन रूपी राजा का मरण होने पर इन्द्रिय रूप सेनाएँ मर जाती हैं उनके मरण के पश्चात् समस्त कर्म मर जाते हैं-नष्ट हो जाते हैं कर्मों का मरण होने पर मोक्ष होता है और मोक्ष में इन्द्रियों के विषयों से रहित शाश्वत नित्य सुख प्राप्त होता है इसलिए मन का मरण करो।

मणकरहो धावंतो णाणवरत्ताइ जेहिं ण हु बद्धो।
ते पुरिसा संसारे हिंडंति दुहाइं भुंजंता ॥62॥

गाथार्थ- [हु] निश्चय से **[जेहिं]** जिन पुरुषों के द्वारा **[धावंतो]** दौड़ता हुआ **[मणकरहो]** मन रूपी ऊँट **[णाणवरत्ताइ]** ज्ञान रूपी मजबूत रस्सी के द्वारा **[ण बद्धो]** नहीं बाँधा गया है **[ते पुरिसा]** वे पुरुष **[संसारे]** संसार में **[दुहाइं]** दुःख **[भुंजंता]** भोगते हुए **[हिंडंति]** परिभ्रमण करते हैं।

गाथार्थ- निश्चय से जिन पुरुषों के द्वारा दौड़ता हुआ मन रूपी ऊँट ज्ञान रूपी मजबूत रस्सी के द्वारा नहीं बाँधा गया है वे पुरुष संसार में दुःख भोगते हुए परिभ्रमण करते हैं।

पिच्छह णरयं पत्तो मणकयदोसेहिं सालिसित्थक्खो।
इय जाणिऊण मुणिणा मणरोही हवइ कायव्वो ॥63॥

गाथार्थ- [पिच्छह] देखो **[मणकयदोसेहिं]** मन से किये हुए दोषों के कारण **[सालिसित्थक्खो]** शालिसिक्थ नाम का मत्स्य **[णरयं पत्तो]** सप्तम नरक को प्राप्त हुआ था। **[इय जाणिऊण]** ऐसा जान कर **[मुणिणा]** मुनि के द्वारा **[मणरोही]** मन का निरोध **[कायव्वो]** करने योग्य **[हवइ]** है।

गाथार्थ- देखो मन से किये हुए दोषों के कारण शालिसिक्थ नाम का मत्स्य सप्तम नरक को प्राप्त हुआ था। ऐसा जान कर मुनि के द्वारा मन का निरोध करने योग्य है।

सिक्खह मणवसियरणं सवसीहूएण जेण मणुआणं।
णासंति रायदोसे तेसिं णासे समो परमो ॥64॥
उवसमवंतो जीवो मणस्स सक्केइ णिग्गहं काउं।
णिग्गहिए मणपसरे अप्पा परमप्पओ हवइ ॥65॥जुअलं॥

गाथार्थ- अहो मुनिजन हो! **[मणवसियरणं सिक्खह]** मन को वश करना सीखो **[जेण सवसीहूएण]** उसके वशीभूत होने पर **[मणुआणं]** मनुष्यों के **[रायदोसे]** राग द्वेष **[णासंति]** नष्ट हो जाते हैं **[तेसिं णासे]** उन राग-द्वेषों का नाश होने पर **[परमो समो]** परम उपशम भाव प्राप्त होता है **[उपसमवंतो जीवो]** उपशम भाव से युक्त जीव **[मणस्स]** मन का **[णिग्गहं काउं]** निग्रह करने के लिए **[सक्केइ]** समर्थ होता है और **[मणपसरे णिग्गहिए]** मन का प्रसार रुक जाने पर **[अप्पा]** आत्मा **[परमप्पओ]** परमात्मा **[हवइ]** हो जाता है।

गाथार्थ- अहो मुनिजन हो! मन को वश करना सीखो उसके वशीभूत होने पर मनुष्यों के राग द्वेष नष्ट हो जाते हैं उन राग-द्वेषों का नाश होने पर परम उपशम भाव प्राप्त होता है उपशम भाव से युक्त जीव मन का निग्रह करने के लिए समर्थ होता है और मन का प्रसार रुक जाने पर आत्मा परमात्मा हो जाता है।

जहं जहं विसएसु रई पसमइ पुरिसस्स णाणमासिज्ज।
तहं तहं मणस्स पसरो भज्जइ आलंबणारहियो ॥66॥

गाथार्थ- [णाणमासिज्ज] ज्ञान को प्राप्त कर **[पुरिसस्स रई]** पुरुष की रति **[जहं जहं]** जिस-जिस प्रकार **[विसऐसु]** विषयों में **[पसमइ]** शान्त हो जाती है **[तहं तहं]** उसीप्रकार **[आलंबणारहिओ]** आलम्बन से रहित **[मणस्स पसरो]** मन का प्रसार **[भज्जइ]** भग्न हो जाता है।

गाथार्थ- ज्ञान को प्राप्त कर पुरुष की रति जिस-जिस प्रकार विषयों में शान्त हो जाती है उसीप्रकार आलम्बन से रहित मन का प्रसार भग्न हो जाता है।

विसयालंबणरहिओ णाणसहावेण भाविओ संतो।
कीलइ अप्पसहावे तक्काले मोक्खसुक्खे सो ॥67॥

गाथार्थ- जब वह मन **[विसयालंबणरहिओ]** विषयों के आलम्बन से रहित होता हुआ **[णाणसहावेण]** ज्ञानस्वभाव से **[भाविओ संतो]** भावित होता है-ज्ञान स्वभाव में लीन होता है **[तक्काले]** तब **[अप्पसहावे]** आत्मा के स्वभावभूत **[मोक्खसुक्खे]** मोक्ष के सुख में **[कीलइ]** क्रीड़ा करता है।

गाथार्थ- जब वह मन विषयों के आलम्बन से रहित होता हुआ ज्ञानस्वभाव से भावित होता है-ज्ञान स्वभाव में लीन होता है तब आत्मा के स्वभावभूत मोक्ष के सुख में क्रीड़ा करता है।

णिल्लूरह मणवच्छो खंडह साहाउ रायदोसा जे।

अहलो करेह पच्छा मा सिंचह मोहसलिलेण ॥68॥

गाथार्थ- [मणवच्छो] मन रूपी वृक्ष को **[णिल्लूरह]** छेद डालो **[जे राय दोसा साहाउ खंडह]** उसकी जो राग-द्वेष रूपी दो शाखाएँ हैं, उन्हें खण्डित कर दो **[अहलो करेह]** फल रहित कर दो और **[मोहसलिलेण]** मोह रूपी जल से उसे **[पच्छा]** फिर **[मा सिंचह]** मत सींचो।

गाथार्थ- मन रूपी वृक्ष को छेद डालो उसकी जो राग-द्वेष रूपी दो शाखाएँ हैं, उन्हें खण्डित कर दो फल रहित कर दो और मोह रूपी जल से उसे फिर मत सींचो।

णट्ठे मणवावारे विसएसु ण जंति इंदिया सव्वे।
छिण्णे तरुस्स मूले कत्तो पुण पल्लवा हुंति ॥69॥

गाथार्थ- [मणवावारे] मन का व्यापार **[णट्ठे]** नष्ट हो जाने पर **[सव्वे इंदिया]** समस्त इन्द्रियाँ **[विसएसु]** विषयों में **[ण जंति]** नहीं जाती हैं, क्योंकि **[तरुस्स]** वृक्ष की **[मूले]** जड़ **[छिण्णे]** कट जाने पर **[पुण]** फिर **[पल्लवा]** पत्ते **[कत्तो]** कहाँ से **[हुंति]** हो सकते हैं?

गाथार्थ- मन का व्यापार नष्ट हो जाने पर समस्त इन्द्रियाँ विषयों में नहीं जाती हैं, क्योंकि वृक्ष की जड़ कट जाने पर फिर पत्ते कहाँ से हो सकते हैं?

मणमित्ते वावारे णट्ठुप्पण्णे य वे गुणा हुंति।
णट्ठे आसवरोहो उप्पण्णे कम्मबंधो य ॥70॥

गाथार्थ- [मणमित्ते] मनोमात्र **[वावारे]** व्यापार के **[णट्ठुप्पण्णे य]** नष्ट तथा उत्पन्न होने पर **[वे गुणा हुंति]** दो गुण-दो कार्य होते हैं। **[णट्ठे]** नष्ट होने पर **[आसवरोहो]** आस्रव का निरोध-संवर **[य]** और **[उप्पण्णे]** उत्पन्न होने पर **[कम्मबंधो]** कर्मबन्ध होता है।

गाथार्थ- मनोमात्र व्यापार के नष्ट तथा उत्पन्न होने पर दो गुण-दो कार्य होते हैं। नष्ट होने पर आस्रव का निरोध-संवर और उत्पन्न होने पर कर्मबन्ध होता है।

परिहरिय रायदोसे सुण्णं काऊण णियमणं सहसा।
अत्थइ जाव ण कालं ताव ण णिहणेइ कम्माइं ॥71॥

गाथार्थ- [जाव कालं] जब तक यह जीव **[रायदोसे]** राग और द्वेष को छोड़ कर **[सहसा]** शीघ्र ही **[णियमणं]** अपने मन को **[सुण्णं]** शून्य **[काऊण]** करके **[ण अत्थइ]** स्थित नहीं होता **[ताव]** तब तक **[कम्माइं]** कर्मों को **[ण णिहणेइ]** नष्ट नहीं करता।

गाथार्थ- जब तक यह जीव राग और द्वेष को छोड़ कर शीघ्र ही अपने मन को शून्य करके स्थित नहीं होता तब तक कर्मों को नष्ट नहीं करता।

तणुवयणरोहणेहिं रुज्झंति ण आसवा सकम्माणं।
जाव ण णिप्फंदकओ समणो मुणिणा सणाणेण ॥72॥

गाथार्थ- [जाव] जब तक **[समणो]** अपना मन **[मुणिणा]** मुनि के द्वारा **[सणाणेण]** स्वसंवेदन ज्ञान से **[ण णिप्फंदकओ]** निश्चल नहीं कर लिया जाता **[ताव]** तब तक **[तणुवयणरोहणेहिं]** काय और वचन योग के रोकने मात्र से **[सकम्माणं]** आत्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त हुए ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के अथवा अपने-अपने निमित्त से बँधने वाले कर्मों के **[आसवा]** आस्रव **[ण रुज्झंति]** नहीं रुकते हैं।

गाथार्थ- जब तक अपना मन मुनि के द्वारा स्वसंवेदन ज्ञान से निश्चल नहीं कर लिया जाता तब तक काय और वचन योग के रोकने मात्र से आत्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त हुए ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के अथवा अपने-अपने निमित्त से बँधने वाले कर्मों के आस्रव नहीं रुकते हैं।

खीणे मणसंचारे तुट्टे तह आसवे य दुवियप्पे।
गलइ पुराणं कम्मं केवलणाणं पयासेइ ॥73॥

गाथार्थ- [मणसंचारे] मन का संचार **[खीणे]** क्षीण होने **[तह]** तथा **[दुवियप्पे]** शुभ-अशुभ अथवा द्रव्य और भाव के दो भेद से दो प्रकार का आस्रव **[तुट्टे]** टूट जाने पर **[पुराणं कम्मं]** पूर्वबद्ध कर्म **[गलइ]** नष्ट हो जाता है और **[केवलणाणं]** केवल ज्ञान **[पयासेइ]** प्रकट हो जाता है।

गाथार्थ- मन का संचार क्षीण होने तथा शुभ-अशुभ अथवा द्रव्य और भाव के दो भेद से दो प्रकार का आस्रव टूट जाने पर पूर्वबद्ध कर्म नष्ट हो जाता है और केवल ज्ञान प्रकट हो जाता है।

जइ इच्छहि कम्मखयं सुण्णं धारेहि णियमणो झत्ति।
सुण्णीकयम्मि चित्ते णूणं अप्पा पयासेइ ॥74॥

गाथार्थ- हे क्षपक! **[जइ]** यदि तू **[कम्मखयं]** कर्मों का क्षय **[इच्छहि]** चाहता है तो **[णियमणो]** अपने मन को **[झत्ति]** शीघ्र ही **[सुण्णं]** शून्य **[धारेहि]** धारण कर **[चित्ते सुण्णीकयम्मि]** मन के शून्य कर लेने पर **[णूणं]** निश्चित ही **[अप्पा]** आत्मा **[पयासेइ]** प्रकट हो जाता है।

गाथार्थ- हे क्षपक! यदि तू कर्मों का क्षय चाहता है तो अपने मन को शीघ्र ही शून्य धारण कर मन के शून्य कर लेने पर निश्चित ही आत्मा प्रकट हो जाता है।

उव्वासहि णियचित्तं वसहि सहावे सुणिम्मले गंतुं।
जइ तो पिच्छसि अप्पा सण्णाणो केवलो सुद्धो ॥75॥

गाथार्थ- हे क्षपक! **[जइ]** यदि तू **[णियचित्तं]** अपने मन को **[उव्वासहि]** विषयों से विमुखता को प्राप्त कराता है और **[गंतु]** परमात्मा को जानने के लिए **[सुणिम्मले]** अत्यन्त निर्मल **[सहावे]** समीचीन भाव से युक्त परमात्मा में **[वसहि]** निवास करता है **[तो]** तो **[सण्णाणो]** सम्यग्ज्ञान से तन्मय **[केवलो]** पर पदार्थों से असंपृक्त तथा **[सुद्धो]** समस्त उपाधियों से रहित **[अप्पा]** आत्मा को **[पिच्छसि]** देख सकता है। स्वसंवेदन ज्ञान से उसका अनुभव कर सकता है।

गाथार्थ- हे क्षपक! यदि तू अपने मन को विषयों से विमुखता को प्राप्त कराता है और परमात्मा को जानने के लिए अत्यन्त

निर्मल समीचीन भाव से युक्त परमात्मा में निवास करता है तो सम्यग्ज्ञान से तन्मय पर पदार्थों से असंपृक्त तथा समस्त उपाधियों से रहित आत्मा को देख सकता है। स्वसंवेदन ज्ञान से उसका अनुभव कर सकता है।

तणुमणवयणे सुण्णो ण य सुण्णो अप्पसुद्धसब्भावे।
ससहावे जो सुण्णो हवइ यसो गयणकुसुमणिहो ॥76॥

गाथार्थ- क्षपक [**तणुमणवयणे**] शरीर, मन और वचन के विषय में तो [**सुण्णो**] शून्य होता है, परन्तु [**अप्पसुद्धसब्भावे**] आत्मा के शुद्ध अस्तित्व में [**ण य सुण्णो**] शून्य नहीं होता। [**जो**] जो [**ससहावे**] स्वकीय आत्मा के सद्भाव में [**सुण्णो**] शून्य [**हवइ**] होता है [**यसो**] वह [**गयणकुसुमणिहो**] आकाश के फूल के समान [**हवइ**] होता है।

गाथार्थ- क्षपक शरीर, मन और वचन के विषय में तो शून्य होता है, परन्तु आत्मा के शुद्ध अस्तित्व में शून्य नहीं होता। जो स्वकीय आत्मा के सद्भाव में शून्य होता है वह आकाश के फूल के समान होता है।

सुण्णज्झाणपइट्ठो जोई ससहावसुक्खसंपण्णो।
परमाणंदे थक्को भरियावत्थो फुडं हवइ ॥77॥

गाथार्थ- [**सुण्णज्झाणपइट्ठो**] शून्य-निर्विकल्पध्यान में प्रविष्ट, [**ससहावसुक्खसंपण्णो**] आत्म-सद्भाव के सुख से संपन्न और [**परमाणंदे**] उत्कृष्ट आनन्द में [**थक्को**] स्थित [**जोई**] जोगी [**फुडं**] स्पष्ट ही [**भरियावत्थो**] पूर्ण कलश के समान

भृतावस्थ-अविनाशीक आत्मानन्द रूपी सुधा से संभृत **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- शून्य-निर्विकल्पध्यान में प्रविष्ट, आत्म-सद्भाव के सुख से संपन्न और उत्कृष्ट आनन्द में स्थित जोगी स्पष्ट ही पूर्ण कलश के समान भृतावस्थ-अविनाशीक आत्मानन्द रूपी सुधा से संभृत होता है।

जत्थ ण झाणं झेयं झायारो णेव चिंतणं किंपि।
ण य धारणावियप्पो तं सुण्णं सुट्ठु भाविज्ज ॥78॥

गाथार्थ- [जत्थ] जिसमें **[ण झाणं झेयं झायारो]** न ध्यान है, न ध्येय है, न ध्याता है अर्थात् जो इन तीनों के विकल्प से रहित है, जिसमें **[किंपि चिंतणं णेव]** किसी प्रकार का चिन्तन नहीं है **[य]** और **[ण धारणावियप्पो]** न जिसमें पार्थिवी, आग्नेयी, वायवी और वारुणी धारणाओं का विकल्प है अथवा जिसमें धारणा-कालान्तर में किसी तत्त्व को विस्मृत न होना तथा विकल्प-असंख्यात लोक प्रमाण विकल्प नहीं हैं **[तं]** उसे **[सुट्ठु]** अच्छी तरह **[सुण्णं]** शून्य ध्यान **[भाविज्ज]** समझो।

गाथार्थ- जिसमें न ध्यान है, न ध्येय है, न ध्याता है अर्थात् जो इन तीनों के विकल्प से रहित है, जिसमें किसी प्रकार का चिन्तन नहीं है और न जिसमें पार्थिवी, आग्नेयी, वायवी और वारुणी धारणाओं का विकल्प है अथवा जिसमें धारणा-कालान्तर में किसी तत्त्व को विस्मृत न होना तथा विकल्प-असंख्यात लोक प्रमाण विकल्प नहीं हैं उसे अच्छी तरह शून्य ध्यान समझो।

जो खलु सुद्धो भावो सो जीवो चेयणावि सा उत्ता।
तं चेव हवदि णाणं दंसणचारित्तयं चेव ॥79॥

गाथार्थ- [खलु] निश्चय से **[जो सुद्धो भावो]** शुद्धभाव है **[सो जीवो]** वह जीव है, **[सा चेयणावि उत्ता]** वही चेतना कही गई है **[तं चेव णाणं हवदि]** वही ज्ञान है और वही **[दंसणचारित्तयं चेव]** दर्शन तथा चारित्र है।

गाथार्थ- निश्चय से शुद्धभाव है वह जीव है, वही चेतना कही गई है वही ज्ञान है और वही दर्शन तथा चारित्र है।

दंसणणाणचरित्ता णिच्छयवाएण हुंति ण हु भिण्णा।
जो खलु सुद्धो भावो तमेव रयणत्तयं जाण ॥80॥

गाथार्थ- [णिच्छयवाएण] निश्चय की अपेक्षा **[हु]** वास्तव में **[दंसणणाणचरित्ता]** दर्शन, ज्ञान और चारित्र **[भिण्णा ण हुंति]** भिन्न नहीं हैं। **[खलु]** निश्चय से **[जो सुद्धो भावो]** जो शुद्धभाव है **[तमेव]** उसे ही **[रयणत्तयं]** रत्नत्रय **[जाण]** जानो।

गाथार्थ- निश्चय की अपेक्षा वास्तव में दर्शन, ज्ञान और चारित्र भिन्न नहीं हैं। निश्चय से जो शुद्धभाव है उसे ही रत्नत्रय जानो।

तत्तियमओ हु अप्पा अवसेसालंबणेहि परिमुक्को।
उत्तो स तेण सुण्णो णाणीहि ण सव्वहा सुण्णो ॥81॥

गाथार्थ- [हु] निश्चय से **[तत्तियमओ]** रत्नत्रय से तन्मय आत्मा **[अवसेसालंबणेहिं]** राग-द्वेषादि समस्त आलम्बनों से रहित है **[तेण]** उस कारण **[णाणीहि]** ज्ञानी जनों के द्वारा **[स]** वह

[सुण्णो] शून्य **[उत्तो]** कहा गया है **[सव्वहा]** सब प्रकार से **[सुण्णो ण]** शून्य नहीं है।

गाथार्थ- निश्चय से रत्नत्रय से तन्मय आत्मा राग-द्वेषादि समस्त आलम्बनों से रहित है उस कारण ज्ञानी जनों के द्वारा वह शून्य कहा गया है सब प्रकार से शून्य नहीं है।

एवंगुणो हु अप्पा जो सो भणिओ हु मोक्खमग्गोत्ति।
अहवा स एव मोक्खो असेसकम्मक्खए हवइ ॥82॥

गाथार्थ- [हु] निश्चय से **[एवंगुणो]** इसप्रकार के गुणों से युक्त **[जो अप्पा]** जो आत्मा है **[सो हु]** वही **[मोक्खमग्गोत्ति]** मोक्षमार्ग इस शब्द से **[भणिओ]** कहा गया है। **[अहवा]** अथवा **[असेसकम्मक्खए]** समस्त कर्मों का क्षय होने पर **[स एव]** वही आत्मा **[मोक्खो]** मोक्ष **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- निश्चय से इसप्रकार के गुणों से युक्त जो आत्मा है वही मोक्षमार्ग इस शब्द से कहा गया है। अथवा समस्त कर्मों का क्षय होने पर वही आत्मा मोक्ष होता है।

जाम वियप्पो कोई जायइ जोइस्स झाणजुत्तस्स।
ताम ण सुण्णं झाणं चिंता वा भावणा अहवा ॥83॥

गाथार्थ- [झाणजुत्तस्स] ध्यान से युक्त **[जोइस्स]** मुनि के **[जाम]** जब तक **[कोई वियप्पो]** कोई विकल्प **[जायइ]** उत्पन्न होता है **[ताम]** तब तक **[सुण्णं]** शून्य-निर्विकल्प **[झाणं]** ध्यान

[ण] नहीं होता? किन्तु **[चिन्ता वा]** चिन्ता **[अहवा]** अथवा **[भावणा]** भावना होती है।

गाथार्थ- ध्यान से युक्त मुनि के जब तक कोई विकल्प उत्पन्न होता है तब तक शून्य-निर्विकल्प ध्यान नहीं होता? किन्तु चिन्ता अथवा भावना होती है।

लवणव्व सलिलजोए झाणे चित्तं विलीयए जस्स।
तस्स सुहासुहडहणो अप्पाअणलो पयासेइ ॥84॥

गाथार्थ- [सलिलजोए] पानी के योग में **[लवणव्व]** नमक के समान **[जस्स]** जिसका **[चित्तं]** चित्त **[झाणे]** ध्यान में **[विलीयए]** विलीन हो जाता है **[तस्स]** उस मुनि के **[सुहासुहडहणो]** शुभ-अशुभ कर्मों को जलाने वाली **[अप्पाअणलो]** आत्मा रूपी अग्नि **[पयासेइ]** प्रकट होती है।

गाथार्थ- पानी के योग में नमक के समान जिसका चित्त ध्यान में विलीन हो जाता है उस मुनि के शुभ-अशुभ कर्मों को जलाने वाली आत्मा रूपी अग्नि प्रकट होती है।

उव्वसिए मणगेहे णट्ठे णीसेसकरणवावारे।
विप्फुरिए ससहावे अप्पा परमप्पओ हवइ ॥85॥

गाथार्थ- [मणगेहे] मन रूपी घर के **[उव्वसिए]** ऊजड़ होने पर **[णीसेसकरणवावारे]** समस्त इन्द्रियों का व्यापार **[णट्ठे]** नष्ट हो जाने पर और **[ससहावे]** स्वकीय स्वभाव को **[विप्फुरिए]** प्रकट होने पर **[अप्पा]** आत्मा **[परमप्पओ]** परमात्मा **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- मन रूपी घर के ऊजड़ होने पर समस्त इन्द्रियों का व्यापार नष्ट हो जाने पर और स्वकीय स्वभाव को प्रकट होने पर आत्मा परमात्मा होता है।

इयएरिसम्मि सुण्णे झाणे झाणिस्स वट्टमाणस्स।
चिरबद्धाण विणासो हवइ सकम्माण सव्वाणं ॥86॥

गाथार्थ- [इयएरिसम्मि] इसप्रकार के **[सुण्णे]** शून्य **[झाणे]** ध्यान में **[वट्टमाणस्स]** स्थित **[झाणिस्स]** ध्याता के **[चिरबद्धाण]** चिरकाल से बँधे हुए **[सव्वाणं सकम्माण]** समस्त अपने कर्मों का **[विणासो]** विनाश **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- इसप्रकार के शून्य ध्यान में स्थित ध्याता के चिरकाल से बँधे हुए समस्त अपने कर्मों का विनाश होता है।

णीसेसकम्मणासे पयडेइ अणंतणाणचउखंधं।
अण्णेवि गुणा य तहा झाणस्स ण दुल्लहं किंपि ॥87॥

गाथार्थ- [णीसेसकम्मणासे] समस्त कर्मों का नाश होने पर **[अणंतणाणचउखंधं]** अनन्तज्ञानादि चतुष्टय प्रकट होता है **[तहा अण्णेवि गुणा]** तथा अन्य गुण भी प्रकट होते हैं। सो ठीक ही है, क्योंकि **[झाणस्स]** ध्यान के लिए **[किंपि]** कुछ भी **[दुल्लहं]** दुर्लभ **[ण]** नहीं है।

गाथार्थ- समस्त कर्मों का नाश होने पर अनन्तज्ञानादि चतुष्टय प्रकट होता है तथा अन्य गुण भी प्रकट होते हैं। सो ठीक ही है, क्योंकि ध्यान के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

जाणइ पस्सइ सव्वं लोयालोयं च दव्वगुणजुत्तं।
एयसमयस्स मज्झे सिद्धो सुद्धो सहावत्थो ॥88॥

गाथार्थ- [सुद्धो] शुद्ध और **[सहावत्थो]** स्वभाव में स्थित **[सिद्धो]** सिद्ध भगवान **[एयसमयस्स मज्झे]** एक समय के बीच **[दव्वगुणजुत्तं]** द्रव्य और गुण से युक्त **[सव्वं लोयालोयं च]** समस्त लोक और अलोक को **[जाणइ पस्सइ]** जानते-देखते हैं।

गाथार्थ- शुद्ध और स्वभाव में स्थित सिद्ध भगवान एक समय के बीच द्रव्य और गुण से युक्त समस्त लोक और अलोक को जानते-देखते हैं।

कालमणंतं जीवो अणुहवइ सहावसुक्खसंभूइं।
इंदियविसयातीदं अणोवमं देहपरिमुक्को ॥89॥

गाथार्थ- [देहपरिमुक्को] शरीर से रहित **[जीवो]** सिद्धात्मा **[कालमणंतं]** अनन्त काल तक **[इंदियविसयातीदं]** इन्द्रिय के विषयों से रहित और **[अणोवमं]** अनुपम **[सहावसुक्खसंभूइं]** स्वाभाविक सुख की विभूति का **[अणुहवइ]** अनुभव करते हैं।

गाथार्थ- शरीर से रहित सिद्धात्मा अनन्त काल तक इन्द्रिय के विषयों से रहित और अनुपम स्वाभाविक सुख की विभूति का अनुभव करते हैं।

इय एवं णाऊणं आराहउ पवयणस्स जं सारं।
आराहणचउखंधं खवओ संसारमोक्खट्ठं ॥90॥

गाथार्थ- [इय एवं णाऊणं] इसे इस तरह जान कर **[खवओ]** क्षपक **[संसारमोक्खट्ठं]** संसार से मोक्ष प्राप्त करने के लिए **[जं पवयणस्स सारं]** जो आगम का सार है **[तं]** उस **[आराहणचउखंधं]** आराधना चतुष्टय की **[आराहउ]** आराधना करे।

गाथार्थ- इसे इस तरह जान कर क्षपक संसार से मोक्ष प्राप्त करने के लिए जो आगम का सार है उस आराधना चतुष्टय की आराधना करे।

धण्णा ते भयवंता अवसाणे सव्वसंगपरिचाए।
काऊण उत्तमट्ठं सुसाहियं णाणवंतेहिं ॥91॥

गाथार्थ- {जेहिं} जिन **[णाणवंतेहिं]** ज्ञानवान जीवों ने **[अवसाणे]** जीवन के अन्त में **[सव्वसंगपरिचाए]** समस्त परिग्रह का त्याग **[काऊण]** कर **[उत्तमट्ठं]** मोक्ष अथवा समाधिमरण को **[सुसाहियं]** अच्छी तरह सिद्ध कर लिया है **[ते]** वे **[धण्णा]** धन्य हैं और **[भयवंता]** जगत्पूज्य हैं।

गाथार्थ- जिन ज्ञानवान जीवों ने जीवन के अन्त में समस्त परिग्रह का त्याग कर मोक्ष अथवा समाधिमरण को अच्छी तरह सिद्ध कर लिया है वे धन्य हैं और जगत्पूज्य हैं।

धण्णोसि तुमं सुज्जस लहिऊणं माणुसं भवं सारं।
कयसंजमेण लद्धं सण्णासे उत्तमं मरणं ॥92॥

गाथार्थ- [सुज्जस] हे निर्मल यश के धारक क्षपक! **[सारं]** श्रेष्ठ **[माणुसं भवं]** मनुष्य भव को **[लहिऊणं]** प्राप्त कर **[कयसंजमेण]** संयम धारण करते हुए तुमने **[सण्णासे]** संन्यास में **[उत्तमं मरणं]** उत्तम मरण **[लद्धं]** प्राप्त किया है, इसलिए **[तुमं]** तुम **[धण्णोसि]** धन्य हो, पुण्यशाली हो।

गाथार्थ- हे निर्मल यश के धारक क्षपक! श्रेष्ठ मनुष्य भव को प्राप्त कर संयम धारण करते हुए तुमने संन्यास में उत्तम मरण प्राप्त किया है, इसलिए तुम धन्य हो, पुण्यशाली हो।

किसिए तणुसंघाए चिट्ठारहियस्स विगयधामस्स।
खवयस्स हवइ दुक्खं तक्काले कायमणुहूयं ॥93॥

गाथार्थ- [तक्काले] संन्यास के समय **[तणुसंघाए]** शरीर का संघटन **[किसिए]** कृश होने पर **[विगयधामस्स]** निर्बल एवं **[चिट्ठारहियस्स]** चेष्टा रहित **[खवयस्स]** क्षपक को **[कायमणुहूयं]** काय और वचन से उत्पन्न होने वाला **[दुक्खं]** दुःख **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- संन्यास के समय शरीर का संघटन कृश होने पर निर्बल एवं चेष्टा रहित क्षपक को काय और वचन से उत्पन्न होने वाला दुःख होता है।

जइ उप्पज्जइ दुक्खं कक्कससंथारगहणदोसेण।
खीणसरीरस्स तुमं सहतं समभावसंजुत्तो ॥94॥

गाथार्थ- हे क्षपक! **[खीणसरीरस्स]** क्षीण शरीर को धारण करने वाले तुम्हें **[जइ]** यदि **[कक्कससंथारगहणदोसेण]** कठोर संथारे के ग्रहण रूप दोष से **[दुक्खं]** दुःख **[उप्पज्जइ]** उत्पन्न होता है तो **[तुमं]** तुम उसे **[समभावसंजुत्तो]** समभाव से युक्त होकर **[सहतं]** सहन करो।

गाथार्थ- हे क्षपक! क्षीण शरीर को धारण करने वाले तुम्हें यदि कठोर संथारे के ग्रहण रूप दोष से दुःख उत्पन्न होता है तो तुम उसे समभाव से युक्त होकर सहन करो।

तं सुगहियसण्णासे जावक्कालं तु वससि संथारे।
तण्हाइदुक्खतत्तो णियकम्मं ताव णिज्जरसि ॥95॥

गाथार्थ- हे क्षपक! **[तं]** तुम **[सुगहियसण्णासे]** संन्यास ग्रहण कर **[जावक्कालं]** जब तक **[संथारे वससि]** संथारे पर निवास करते हो **[ताव]** तब तक **[तण्हाइदुक्खतत्तो]** तृषा आदि के दुःख से संतप्त होते हुए **[णियकम्मं]** अपने कर्म की **[णिज्जरसि]** निर्जरा करते हो।

गाथार्थ- हे क्षपक! तुम संन्यास ग्रहण कर जब तक संथारे पर निवास करते हो तब तक तृषा आदि के दुःख से संतप्त होते हुए अपने कर्म की निर्जरा करते हो।

जहं जहं पीडा जायइ भुक्खाइपरीसहेहिं देहस्स।
तहं तहं गलंति णूणं चिरभवबद्धाणि कम्माइं ॥96॥

गाथार्थ- [जहं जहं] जिस-जिस प्रकार **[भुक्खाइपरीसहेहिं]** क्षुधा आदि परीषहों के द्वारा **[देहस्स]** शरीर को **[पीड़ा]** तीव्रतर वेदना **[जायइ]** उत्पन्न होती है **[तहं तहं]** उसी-उसी प्रकार क्षपक के **[चिरभवबद्धाणि]** चिर काल से अनेक भवों में बँधे हुए **[कम्माइं]** कर्म **[णूणं]** निश्चित ही **[गलंति]** गल जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं।

गाथार्थ- जिस-जिस प्रकार क्षुधा आदि परीषहों के द्वारा शरीर को तीव्रतर वेदना उत्पन्न होती है उसी-उसी प्रकार क्षपक के चिर काल से अनेक भवों में बँधे हुए कर्म निश्चित ही गल जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं।

तत्तोहं तणुजोए दुक्खेहिं अणोवमेहिं तिव्वेहि।
णरसुरणारयतिरिए जहा जलं अग्गिजोएण ॥97॥

गाथार्थ- [अग्गिजोएण] अग्नि के योग से **[जलं जहा]** जल के समान **[अहं]** मैं **[तणुजोए]** शरीर का संयोग होने पर **[तिव्वेहि]** तीव्र तथा **[अणोवमेहिं]** अनुपम **[दुक्खेहिं]** दुःखों के द्वारा **[णरसुरणारयतिरिए]** मनुष्य, देव, नारकी और तिर्यंच गति में **[तत्तो]** संतप्त हुआ हूँ।

गाथार्थ- अग्नि के योग से जल के समान मैं शरीर का संयोग होने पर तीव्र तथा अनुपम दुःखों के द्वारा मनुष्य, देव, नारकी और तिर्यंच गति में संतप्त हुआ हूँ।

ण गणेइ दुक्खसल्लं इयभावणभाविओ फुडं खवओ।
पडिवज्जइ ससहावं हवइ सुही णाणा सुक्खेण ॥98॥

गाथार्थ- **[इयभावणभाविओ]** इसप्रकार की भावना से सुसंस्कृत **[खवओ]** क्षपक **[फुडं]** स्पष्ट ही **[दुक्खसल्लं]** दुःख रूपी शल्य को **[ण गणेइ]** कुछ नहीं गिनता है **[ससहावं]** अपने स्वभाव को **[पडिवज्जइ]** प्राप्त होता है और **[णाणासुक्खेण]** भेदज्ञान जनित सुख से **[सुही]** सुखी **[हवइ]** होता है।

गाथार्थ- इसप्रकार की भावना से सुसंस्कृत क्षपक स्पष्ट ही दुःख रूपी शल्य को कुछ नहीं गिनता है अपने स्वभाव को प्राप्त होता है और भेदज्ञान जनित सुख से सुखी होता है।

भित्तूण रायदोसे छित्तूण य विसयसंभवे सुक्खे।
अगणंतो तणुदुक्खं झायस्स णिजप्पयं खवया ॥99॥

गाथार्थ- **[खवया]** हे क्षपक! तुम **[रायदोसे]** राग-द्वेष को **[भित्तूण]** भेद कर **[य]** तथा **[विसयसंभवे]** विषयों से उत्पन्न होने वाले **[सुक्खे]** सुखों को **[छित्तूण]** छेद कर **[तणुदुक्खं]** शरीर के दुःख को **[अगणंतो]** कुछ नहीं गिनते हुए **[णिजप्पयं]** स्वकीय आत्मा का **[झायस्स]** ध्यान करो।

गाथार्थ- हे क्षपक! तुम राग-द्वेष को भेद कर तथा विषयों से उत्पन्न होने वाले सुखों को छेद कर शरीर के दुःख को कुछ नहीं गिनते हुए स्वकीय आत्मा का ध्यान करो।

जाव ण तवग्गितत्तं सदेहमूसाइं णाणपवणेण।
ताव ण चत्तकलंकं जीवसुवण्णं खु णिव्वडइ ॥100॥

गाथार्थ- [खु] निश्चय से **[जाव]** जब तक **[जीवसुवण्णं]** आत्मा रूपी सुवर्ण **[सदेहमूसाइं]** अपने शरीर रूपी साँचे **[मूस]** के भीतर **[णाणपवणेण]** ज्ञान रूपी वायु द्वारा **[तवग्गितत्तं]** तप रूपी अग्नि से संतप्त **[ण]** नहीं होता **[ताव]** तब तक **[चत्तकलंकं]** कर्म रूपी कालिमा से रहित **[ण णिव्वडइ]** नहीं निकलता / होता।

गाथार्थ- निश्चय से जब तक आत्मा रूपी सुवर्ण अपने शरीर रूपी साँचे के भीतर ज्ञान रूपी वायु द्वारा तप रूपी अग्नि से संतप्त नहीं होता तब तक कर्म रूपी कालिमा से रहित नहीं निकलता / होता।

णाहं देहो ण मणो ण तेण मे अत्थि इत्थ दुक्खाइं।
समभावणाइ जुत्तो विसहसु दुक्खं अहो खवय ॥101॥

गाथार्थ- [अहं] मैं **[देहो ण]** शरीर नहीं हूँ **[मणो ण]** मन नहीं हूँ **[तेण]** इसलिए **[इत्थ दुक्खाइं]** शरीर और मन में होने वाले दुःख **[मे ण अत्थि]** मेरे नहीं होते। **[समभावणाइ जुत्तो]** इसप्रकार की समभावना से युक्त होते हुए **[अहो खवय]** हे क्षपक! तुम **[दुक्खं विसहसु]** दुःख सहन करो।

गाथार्थ- मैं शरीर नहीं हूँ मन नहीं हूँ इसलिए शरीर और मन में होने वाले दुःख मेरे नहीं होते। इसप्रकार की समभावना से युक्त होते हुए हे क्षपक! तुम दुःख सहन करो।

ण य अत्थि कोवि वाही ण य मरणं अत्थि मे विसुद्धस्स।
वाही मरणं काए तम्हा दुक्खं ण मे अत्थि ॥102॥

गाथार्थ- [विसुद्धस्स] विशुद्ध स्वभाव को धारण करने वाले मेरे लिए **[ण कोवि वाही अत्थि]** न कोई शारीरिक पीड़ा है **[ण य मरणं अत्थि]** और न मेरा मरण है **[वाही मरणं]** शारीरिक पीड़ा और मरण तो **[काए]** शरीर में हैं **[तम्हा]** इसलिए **[मे दुक्खं ण अत्थि]** मुझे दुःख नहीं है।

गाथार्थ- विशुद्ध स्वभाव को धारण करने वाले मेरे लिए न कोई शारीरिक पीड़ा है और न मेरा मरण है शारीरिक पीड़ा और मरण तो शरीर में हैं इसलिए मुझे दुःख नहीं है।

सुक्खमओ अहमेक्को सुद्धप्पा णाणदंसणसमग्गो।
अण्णे जे परभावा ते सव्वे कम्मणा जणिया ॥103॥

गाथार्थ- [अहं] मैं **[सुक्खमओ]** सुखमय **[एक्को]** एक **[सुद्धप्पा]** शुद्धात्मा तथा **[णाणदंसणसमग्गो]** ज्ञान-दर्शन में परिपूर्ण हूँ **[अण्णे जे परभावा]** अन्य जो परभाव हैं **[ते सव्वे]** वे सब **[कम्मणा जणिया]** कर्म से उत्पन्न हैं।

गाथार्थ- मैं सुखमय एक शुद्धात्मा तथा ज्ञान-दर्शन में परिपूर्ण हूँ अन्य जो परभाव हैं वे सब कर्म से उत्पन्न हैं।

णिच्चो सुक्खसहावो जरमरणविवज्जिओ सयारूवी।
णाणी जम्मणरहिओ इक्कोहं केवलो सुद्धो ॥104॥

गाथार्थ- क्षपक को ऐसी भावना करनी चाहिए कि **[अहं]** मैं **[णिच्चो]** नित्य हूँ **[सया]** सर्वदा **[सुक्खसहावो]** सुख स्वभाव वाला हूँ **[जरमरणविवज्जिओ]** जरा और मरण से रहित हूँ

[सयारूवी] हमेशा अरूपी हूँ **[णाणी]** ज्ञानी हूँ **[जम्मणरहिओ]** जन्म से रहित हूँ **[इक्कोहं]** एक हूँ **[केवली]** पर की सहायता से रहित हूँ और **[सुद्धो]** शुद्ध हूँ।

गाथार्थ- क्षपक को ऐसी भावना करनी चाहिए कि मैं नित्य हूँ सर्वदा सुख स्वभाव वाला हूँ जरा और मरण से रहित हूँ हमेशा अरूपी हूँ ज्ञानी हूँ जन्म से रहित हूँ एक हूँ पर की सहायता से रहित हूँ और शुद्ध हूँ।

इय भावणाइं जुत्तो अवगण्णिय देहदुक्खसंघायं।
जीवो देहाउ तुमं कड्ढसु खग्गुव्व कोसाओ ॥105॥

गाथार्थ- [इय भावणाइं] ऐसी भावना से **[जुत्तो]** युक्त होकर **[तुमं]** तुम **[देह दुक्खसंघायं]** शरीर सम्बन्धी दुःखों के समूह की **[अवगण्णिय]** उपेक्षा कर **[जीवो]** जीव को **[देहाउ]** शरीर से **[कोसाओ]** म्यान से **[खग्गुव्व]** तलवार की तरह **[कड्ढसु]** पृथक् निकालो।

गाथार्थ- ऐसी भावना से युक्त होकर तुम शरीर सम्बन्धी दुःखों के समूह की उपेक्षा कर जीव को शरीर से म्यान से तलवार की तरह पृथक् निकालो।

हणिऊण अट्टरुद्दे अप्पा परमप्पयम्मि ठविऊण।
भावियसहाउ जीवो कड्ढसु देहाउ मलमुत्तो ॥106॥

गाथार्थ- [भावियसहाउ] हे स्वभाव की भावना करने वाले क्षपक! **[अट्टरुद्दे]** आर्त और रौद्रध्यान को **[हणिऊण]** नष्ट कर

[अप्पा] आत्मा को **[परमप्पयम्मि]** परमात्मा में **[ठविऊण]** लगाकर **[मलमुत्तो जीवो]** निर्मल जीव को **[देहाउ]** शरीर से **[कड्ढसु]** पृथक् करो।

गाथार्थ- हे स्वभाव की भावना करने वाले क्षपक! आर्त और रौद्रध्यान को नष्ट कर आत्मा को परमात्मा में लगाकर निर्मल जीव को शरीर से पृथक् करो।

कालाई लहिऊणं छित्तूण य अट्ठकम्मसंखलयं।
केवलणाणपहाणा भविया सिज्झंति तम्मि भवे ॥107॥

गाथार्थ- [भविया] भव्य जीव **[कालाई लहिऊणं]** काल आदि लब्धियों को प्राप्त कर **[य]** तथा **[अट्ठकम्मसंखलयं]** आठ कर्मों की श्रृंखला को **[छित्तूण]** छेदकर **[केवलणाणपहाणा]** केवलज्ञान से युक्त होते हुए **[तम्मि भवे]** उसी भव में **[सिज्झंति]** सिद्ध हो जाते हैं।

गाथार्थ- भव्य जीव काल आदि लब्धियों को प्राप्त कर तथा आठ कर्मों की श्रृंखला को छेदकर केवलज्ञान से युक्त होते हुए उसी भव में सिद्ध हो जाते हैं।

आराहिऊण केइ चउव्विहाराहणाइं जं सारं।
उव्वरियसेसपुण्णा सव्वट्ठणिवासिणो हुंति ॥108॥

गाथार्थ- [उव्वरियसेसपुण्णा] जिनकी पुण्य प्रकृतियाँ नष्ट होने से शेष बची हैं, ऐसे **[केई]** कोई आराधक **[चउव्विहाराहणाइं जं सारं]** चार प्रकार की आराधनाओं में जो श्रेष्ठ है, उस शुद्ध बुद्ध

स्वभाव परमात्मा की **[आराहिऊण]** आराधना करके **[सव्वट्ठणिवासिणो]** सर्वार्थसिद्धि में निवास करने वाले **[हुंति]** होते हैं।

गाथार्थ- जिनकी पुण्य प्रकृतियाँ नष्ट होने से शेष बची हैं, ऐसे कोई आराधक चार प्रकार की आराधनाओं में जो श्रेष्ठ है, उस शुद्ध बुद्ध स्वभाव परमात्मा की आराधना करके सर्वार्थसिद्धि में निवास करने वाले होते हैं।

जेसिं हुंति जहण्णा चउव्विहाराहणा हु खवयाणं।
सत्तट्ठभवे गंतुं तेवि य पावंति णिव्वाणं ॥109॥

गाथार्थ- [हु] निश्चय से **[जेसिं]** जिन **[खवयाणं]** क्षपकों के **[जहण्णा चउव्विहाराहणा]** चार प्रकार की जघन्य आराधनाएँ **[हुंति]** होती हैं **[तेवि य]** वे भी **[सत्तट्ठभवे]** सात-आठ भव **[गत्वा]** व्यतीत कर **[णिव्वाणं पावंति]** निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

गाथार्थ- निश्चय से जिन क्षपकों के चार प्रकार की जघन्य आराधनाएँ होती हैं वे भी सात-आठ भव व्यतीत कर निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

उत्तमदेवमणुस्से सुक्खाइं अणोवमाइं भुत्तूण।
आराहणउवजुत्ता भविया सिज्झंति झाणट्ठा ॥110॥

गाथार्थ- [आराहणउवजुत्ता] आराधना में उपयुक्त तथा **[झाणट्ठा]** ध्यान में स्थित **[भविया]** भव्यजीव **[उत्तमदेव**

मणुस्से] उत्तम देव और मनुष्यों में **[अणोवमाइं]** अनुपम **[सुक्खाइं]** सुख **[भुत्तूण]** भोग कर **[सिज्झंति]** सिद्ध होते हैं।

गाथार्थ- आराधना में उपयुक्त तथा ध्यान में स्थित भव्यजीव उत्तम देव और मनुष्यों में अनुपम सुख भोग कर सिद्ध होते हैं।

अइ कुणउ तवं पालेउ संजमं पढउ सयलसत्थाइं।
जाम ण झावइ अप्पा ताम ण मोक्खो जिणो भणइ ॥111॥

गाथार्थ- प्राणी **[अइ तवं कुणउ]** अत्यन्त तप करे, **[संजमं पालेउ]** संयम का पालन करे और **[सयल सत्थाइं पढउ]** समस्त शास्त्रों को पढ़े, किन्तु **[जाम]** जब तक **[अप्पा ण झावइ]** आत्मा का ध्यान नहीं करता है **[ताम]** तब तक **[मोक्खो]** मोक्ष नहीं होता ऐसा **[जिणो भणइ]** जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

गाथार्थ- प्राणी अत्यन्त तप करे, संयम का पालन करे और समस्त शास्त्रों को पढ़े, किन्तु जब तक आत्मा का ध्यान नहीं करता है तब तक मोक्ष नहीं होता ऐसा जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

चइऊण सव्वसंगं लिंगं धरिऊण जिणवरिंदाणं।
अप्पाणं झाऊणं भविया सिज्झंति णियमेण ॥112॥

गाथार्थ- [भविया] भव्यजीव **[सव्वसंगं]** सर्व परिग्रह को **[चइऊण]** छोड़कर **[जिणवरिंदाणं]** जिनेन्द्र भगवान का **[लिंगं]** दिगम्बर वेष **[धरिऊण]** धारण कर तथा **[अप्पाणं झाऊण]** आत्मा का ध्यान कर **[णियमेण]** नियम से **[सिज्झंति]** सिद्ध होते हैं।

गाथार्थ- भव्यजीव सर्व परिग्रह को छोड़कर जिनेन्द्र भगवान का दिगम्बर वेष धारण कर तथा आत्मा का ध्यान कर नियम से सिद्ध होते हैं।

आराहणाइ सारं उवइट्ठं जेहिं मुणिवरिंदेहिं।
आराहियं च जेहिं ते सव्वेहं पवंदामि ॥113॥

गाथार्थ- [जेहिं मुणिवरिंदेहिं] जिन मुनिराजों ने **[आराहणाइसारं]** आराधनासार का **[उवइट्ठं]** उपदेश दिया है **[च]** और **[जेहिं]** जिन मुनिराजों ने **[आराहियं]** उसकी आराधना की है **[ते सव्वे]** उन सब की **[अहं]** मैं **[पवंदामि]** वन्दना करता हूँ।

गाथार्थ- जिन मुनिराजों ने आराधनासार का उपदेश दिया है और जिन मुनिराजों ने उसकी आराधना की है उन सब की मैं वन्दना करता हूँ।

ण य मे अत्थि कवित्तं ण मुणामो छंदलक्खणं किंपि।
णियभावणाणिमित्तं रइयं आराहणासारं ॥114॥

गाथार्थ- [ण मे कवित्तं अत्थि] न मैं कवि हूँ **[य]** और **[ण किंपि छंदलक्खणं मुणामो]** न मैं छंदों का लक्षण जानता हूँ। मैंने तो **[णियभावणाणिमित्तं]** मात्र अपनी भावना के कारण **[आराहणासारं]** आराधनासार **[रइयं]** रचा है।

गाथार्थ- न मैं कवि हूँ और न मैं छंदों का लक्षण जानता हूँ। मैंने तो मात्र अपनी भावना के कारण आराधनासार रचा है।

अमुणियतच्चेण इमं भणियं जं किंपि देवसेणेण।
सोहंतु तं मुणिंदा अत्थि हु जइ पवयणविरुद्धम् ॥115॥

गाथार्थ- [अमुणियतच्चेण] तत्त्व को नहीं जानने वाले **[देवसेणेण]** देवसेन ने **[इमं]** यह **[जं किंपि]** जो कुछ **[भणियं]** कहा है, इसमें **[हु]** निश्चय से **[जइ]** यदि कुछ **[पवयणविरुद्धं]** आगम से विरुद्ध हो तो **[तं]** उसे **[मुणिंदा]** मुनिराज **[सोहंतु]** शुद्ध कर लें।

गाथार्थ- तत्त्व को नहीं जानने वाले देवसेन ने यह जो कुछ कहा है, इसमें निश्चय से यदि कुछ आगम से विरुद्ध हो तो उसे मुनिराज शुद्ध कर लें।

॥ इसप्रकार श्री देवसेनाचार्य विरचित आराधनासार समाप्त हुआ ॥

